नही आवे-बताओ, चाचा का फिर कौन अच्छा हाल देखेगा ? तुम अपने लिए नहीं वरन अपने चाचा को घर चलकर अच्छा देखने के लिये छाता लगा लो। तुम किसी बात का संकोच न करो मेरेपास ओवर कोट है। ”

डाक्टर की इस मन मोहनी बातने सुन्दरी के जी पर असर किया। उसने डाक्टर साहब को धन्यवाद दिया और छाता ले अपने ऊपर लगा लिया। दोनो बड़ी शीघ्रता के साथ घर की ओर चले।

घर पहुंचने पर डाक्टर ने बनवारी को बड़े ध्यान से देखा और दवा बतलाकर जानेकी आज्ञा मांगी; परन्तु बनवारी ने थोड़ी देर तक और ठहरने की विनती की। सुन्दरी ने अपने हाथ से चाय तय्यार कर उसका एक प्याला डाक्टर साहब के भेट किया। डाक्टर ने भी बड़े अनुरोध के उपरान्त चाय का प्याला लेकर पिया और दूसरे दिन आनेकी प्रतिज्ञा कर अपने घर को विदा हुये।

दूसरे दिन डाक्टर ने बनवारी को फिर देखा और उनकी बुरी दशा देख साफ साफ कहा 'कि आपको आफिस से छुट्टी लेकर कम से कम एक महीना आराम करना चाहिये'।

डाक्टर साहब के कहने पर बनवारी ने अपने साहब के पास एक महीने की छुट्टी के लिये अर्ज़ी भेज दी। हमारे इस नवीन परिचित डाक्टर की दवा बनवारी ने शुरू की।

४

बनवारी को देखने के लिये डाक्टर साहब हर रोज़ एक बार नहीं दो दो तीन तीन बार आने लगे। क्या बीमार बनवारी को देखने के लियेही डाक्टर साहब प्रतिदिन आते थे ? या उन्हे कोई दूसरी चुम्बक पत्थर कीसी शक्ति खींचलाती थी ? उसदिन रात्रि के समय स्टेशन के समीप बिजली के चमक में जो मूर्ति डाक्टर साहब ने देखी थी उस मूर्ति को उन्हो ने उसी समय अपने हृदय में स्थापन कर लिया, वही मूर्ति डाक्टर साहब के आंखों के सामने रात दिन

घूमा करती थी। चित्र खींचने की नई नई कलैं ईजाद हुईं, रात को फोटो उतारने का यंत्र बना, विद्युत् शक्ति द्वारा फोटो उतारने की यह एक विलक्षण युक्ति निकाली गई; सच है प्रेम तूलिका से जो चित्र तैयार होता है उसके सदृश क्या दूसरी कल फोटो या चित्र उतारने की हो सक्ती है? उजेला हो या अंधेरा, आंखें बन्द हों चाहे खुली परन्तु अन्तःकरण में बैठी प्रेम चित्र की तस्वीर सदैव दिखाई पड़ती है। कोई २ लोग ऐसा भी कहते हैं कि प्रेम गुण को नही देखता यह तो मेल मिलाप और सत्संग से बढ़ता है जैसा कि किसी कविने कहा है;—

विद्या, बेलि, महीप, तिय ये न गिनै गुणजात,
जो समीप इनके रहत, ताहीसों लिपटात।

परन्तु कहीं २ इसका उल्टा देखने में आता है कि अचानक दृष्टि पात होतेही प्रेम मूर्ति संमुख आकर अपना प्रभाव डालती हैं कण्व ऋषि के आश्रम में बाग़ के पेंड़ों को सींचते हुये कई एक सुन्दरियों के साथ शकुन्तला ने दुष्यन्त को देखा और देखतेही उसपर मोहित होगये धनुष यज्ञ में सीता जी ने रामचन्द्र का मुख देख पिता की प्रतिज्ञा पूरी होने के पहिलेही अपने को उनके समर्पण करदिया। मुख देख प्रीति उत्पन्न हो मिलने की अभिलाषा और मिलकर जीवन पर्यन्त एक भाव रहने का उदाहरण प्रत्यक्ष है।

अब हम अपने पाठकों को थोड़ासा डाक्टर साहब का परिचय देते हैं। हमारे ये युवा डाक्टर गतवर्ष लाहोर मेडिकल कालिज से परिक्षोत्तीर्ण हुये हैं और अब थोड़े दिनों से काशी में आकर अपना निज का औषधालय खोला है। पहले पहल तो आप का विचार सरकारी नौकरी करने का था परन्तु उसमें स्वतंत्रता छिन जाने के भय से अपना निजका औषधालय उन्होने खोला। इनको यहां पचास, साठ रुपया मासिक की आमदनी हो जाती थी और इसी में अपना निर्वाह करते थे। खर्च इनके पास इतना था कि खा पी कर, नौकर चाकरों

और मकान तथा दूकान का किराया दे देवाय महीने में एक पैसा भी नहीं बचता था। पहले पहल काम आरम्भ करने में लोग भी बहुत कम आते थे। संसार में पुराने अनुभविक वैद्य डाकृर का लोग अधिक विश्वास करते हैं। नवीन वैद्य डाक्टरों से लोग स्वभावतः खिचते रहते हैं कि नमालूम किस प्रकार की औषध दे दें। परन्तु हमारे इस अपरिचित नवीन डाक्टर साहब ने परिश्रम और उद्योग द्वारा शहर के लोगों को बहुत कुछ अपना विश्वास पात्र बना लिया था और इसी विश्वास ने डाक्टर साहब के मित्रों को भविष्यत् में इनके बड़े होने की आशा बंधाई। हमारे इस नये परिचित डाक्टर साहब का नाम कृष्णकुमार था।

डाक्टर साहब ने जब से बनवारी की दवा की, तब से वे सांझ सवेरा, अबेरा, कुबेरा उनके घर पर आने जाने लगे। यह देखकर अड़ोसी पड़ोसियों के मनों में भांति भांति की शंकायें पैदा हुईं। परन्तु बनवारी और उनकी पत्नी श्यामा को डाक्टर साहब के आने से किसी प्रकार का भय न प्रतीत हुआ। वे लोग उलटा उनके आने से प्रसन्न होते थे। बनवारी को अच्छा करने के लिये डाक्टर साहब ने बड़ा परिश्रम किया। बनवारी की तबियत इनकी दवा से रोज़ ब रोज़ अच्छी होने लगी। अब बनवारी की पत्नी श्यामा कभी कभी डाक्टर साहब को भोजन करने का भी आग्रह करती थीं। थोड़े दिनों मेंही डाक्टर साहब का बनवारी से घर घरौवा हो गया, किसी तरह का दुराव आपस में एक दूसरे से नहीं रहा। डाक्टर साहब जिस समय आते सुन्दरी उसी समय चाय का प्याला और पान उनके लिये तय्यार करती। डाक्टर साहब के आने से घर के सब लोगों की अपेक्षा सुन्दरी को अधिक आनन्द होता। जिस किसी दिन अवकाश न मिलने पर डाक्टर साहब न आते उस दिन सुन्दरी बड़ी बे चैन रहती परन्तु ऐसा समय बहुत करके शायद कभीही आता था। उनके न आने से वह बार बार दर्वाज़े पर आती और खड़ी हो कर सड़क पर देखती; कभी कभी छत पर चढ़ कर भी देखा करती। धीरे धीरे यह मित्रता प्रेम में बदल गई। सुन्दरी के माता पिता का ध्यान इसओर न गया

हो ऐसा नहीं, परन्तु इन्हा ने इसमें हस्ताक्षेप करना अच्छा न समझा।

एक दिन संध्या समय बनवारी साहब के बंगले पर एक ज़रूरी काम के लिये गये थे, उनकी पत्नी श्यामा भी घर के काम करने में लगी थी। सुन्दरी और हमारे डाक्टर कृष्णकुमार बाग की रौसों पर टहलते हुये ओस में भीने फूलों की मीठी२ सुगंधि ले रहे थे। आपस में प्रेमालापभी होता जाता था। इससमय को डाक्टर साहब ने अनुकूल समझ अपने मनकी बात सुन्दरी से कहा। डाक्टर साहब की बात सुनकर सुन्दरी ने लज्जित हो कम्पित स्वर से बोली "डाक्टर साहब ब्याह करने की अभी मेरी इच्छा नहीं है"।

"मैं कुछ अभी नहीं चाहता हूं। मैं एक दो वर्ष तक आपकी राह देख सका हूं। मेरी आशा पूरी होगी ऐसा मुझे भरोसा होना चाहिये; तुम मेरे साथ ब्याह करने की प्रतिज्ञा करो"।

सुन्दरी बहुत देर तक सोचती खड़ी रही। पीछे बड़े गम्भीर भाव से उसने कहा "डाक्टर साहब मैं ब्याह करने को राज़ी हूं, परन्तु मुझे सुखी रखने के लिये क्या तुम्हारे पास पूरा सामान है?

डाक्टर साहब यह सुन बड़े अचंभे में आये और चुप चाप वहां खड़े रहे उनके मुख से उस समय एक भी सब्द नही निकला।

डाक्टर साहब का मलिन मुख देख सुन्दरी के कोमल हृदय में दया उमड़ हुई उसने प्रेमपूर्वक धीरज के साथ कहा "डाक्टर साहब मेरा हृदय कठोर है ऐसा आप अपने मन में कभी न लाना मेरा चित्त जैसा है, यह परमेश्वर जानता है। मैं उसकी साक्षी देकर आप से कहती हूं कि मैंने अपना सर्वस्व आप के अर्पण किया है, परन्तु जब तक आप सुख के पूरे साधन न इकट्ठा करलें तब तक मैं अपने खर्च का भार आप के सर पर डाल आपको और अधिक संकट मे नहीं डालना चाहती। आराम के साथ निर्वाह करने की शक्ति जब आप में आजायगी तब तो फिर मैं-आपही की हूं"।

सुन्दरी ने आंखों में आंसूभर कर ये शब्द कहे और डाक्टर कृष्णकुमार ने आंख में आंसूलाकर उनको सुना। थोड़ी देरतक दोनों एक दूसरे के ओर देखते हुये निस्तब्ध खड़े रहे। अन्त में बड़े कष्ट के साथ कृष्णकुमार ने सुन्दरी का कहना स्वीकार किया।

५

सुन्दरी की बात स्वीकार करने के दिन से डाक्टर कृष्णकुमार बनवारी के घर नहीं आये, और न उनकी सुन्दरी से भेंट हुई। इस वार्त्तालाप को हुये छ महीने बीत गये तो भी डाक्टर साहब का कुछ पता न चला सुन्दरी रोज़ डाक्टर साहब का स्मरण करती थी। डाक्टर साहब की शीघ्र उन्नति हो वह यही सदैव ईश्वर से प्रार्थना किया करती।

किसी ज़रूरी काम से बनवारी चार पांच दिन के लिये घर से बाहर एक गांव को चले गये। घर पर केवल श्यामा और सुन्दरी रहगई थी-एक दिन संध्या के समय ग्यारह साढ़े ग्यारह बजे के करीब सुन्दरी एक कमरे में आराम कुरसी पर बैठी हुई किताब पढ़ रही थी इतने में डाकिया ने आकर श्यामा के नाम का एक पत्र उसके हाथ में दिया। मां की आज्ञा पाने पर सुन्दरी ने उसे खोल डाला। इसका कुछ भाग छपा और कुछ भाग में अङ्गरेज़ी स्याही ब्लूब्लैक से यह लिखा हुआ था;-

कलक्टरियट आफिस काशी १५-४-

श्रीमती श्यामा

मुझे आप से एक ज़रूरी काम है। कृपा करके आप मुझसे कल दफ्तर या बंगले पर अवश्य मिल जाइये आशा है कि आप अवश्य कष्ट स्वीकार कर कल पधारेंगी।

आपका........................

आर, डेविस

कलक्टर-काशी

"नमालूम क्यों कलक्टर साहब ने ज़रूरी चिट्ठी भेज कल मुझे बुलाया है ? न जाने क्या काम है ? मेरी समझ में तो कुछ नहीं आता। आज बाबू जी भी घर में नहीं हैं, नहीं तो उन्ही से सलाह लेती।" इन्हीं बातों का विचार करके श्यामा बड़ी व्याकुल हुई। मां को घबड़ाई हुई देख सुन्दरी ने कहा "मां' तुम क्यों घबड़ाती हो, तुमने कुछ कसूर तो कियाही नहीं; कल यही चिट्ठी सबूत के तौर पर लिये जाना और कहना कि आप ने मुझे क्यों बुलाया है ? जो काम हो कहिये, मैं हाज़िर हूं। ,, सुन्दरी की बात सुनकर श्यामा को धीरज आया उसने कहा 'अच्छा बेटा' तो कल हम और तुम दोनों साहब के बंगले पर चलेंगी।

सवेरा होतेही श्यामा ने कपड़े अपड़े पहन एक गाड़ी किराया कर अपनी लड़की सुन्दरी को साथ ले साहब के यहां बंगले पर जाने को विदा हुई। साहब के बंगले पर पहुंच श्यामा ने अपने नाम का कार्ड साहब के पास भेजा। साहब उससमय कुछ काम कर रहे थे। उन्हो ने भीतर सेही चपरासी द्वारा कहला भेजा कि श्रीमती श्यामा को हमारा सलाम दो; और कहो कि वह कष्ट स्वीकार करके थोड़ी देर बाहर बैठें मैं अभी काम से फुरसत पाने पर उनसे भेंट करूंगा। चपरासी ने बाहर आकर साहब का सलाम कहा और दो कुरसियां बैठने को डालदीं।

कोई आध घंटे के बाद साहब ने श्यामा को भीतर बुलाया। श्यामा भीतर गई साहब ने उन्हे बड़े तपाक के साथ उठकर कुरसी पर बिठलाया। श्यामा ने भी बड़ी नम्रता पूर्बक साहब को सलाम किया और कुरसीपर बैठ गई।

"साहब ने पूछा क्या आपही का नाम श्यामा है ? मैंने आज आप को एक ज़रूरी काम के लिये बुलाया है,,।

साहब की बात चीत सुन श्यामा घबड़ा सी गई ऐसा कि उसके मुख से एक भी बात न निकलसकी। यह देख साहब ने कहा

"आप घबड़ाइये मत घबड़ाने वाली कोई बात नहीं है। मैं आप से आप के घराने का कुछ हाल पूछना चाहता हूं उसका ठीक ठीक हाल आप कहिये। क्या आप के कोई सन्तान है ? "हां साहब मेरे एक लड़की है,,। श्यामा ने बड़ी नम्रता के साथ उत्तर दिया।

"तब तो उस लड़की को बड़ी भाग्यवान् समझना चाहिये"। साहब ने फिर कहा "यथार्थ में आप की लड़की बड़ी भाग्यवान् है। मैं आप से सच्च कहता हूं। उस का जीवन बड़ा सुख मय होगा। आप भी अपनी इकलौती लड़की को आनन्दित देख बड़ी प्रसन्न होंगी। क्यों जो मैं कहता हूं सच है न ? " ॥

"क्या हाल है ? श्यामा ने घबड़ा कर साहब से पूछा न मालूम आप गोलमगोल क्या कहते हैं। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता"।

"धीरज धरो धीरज " साहब ने गम्भीर भाव से कहा।

"क्या इस लड़की के सिवाय और भी कोई आप के नज़दीकी संबन्धी अर्थात् बहन भाई या उनके बाल बच्चे कोई नहीं है"।

"अच्छा, अब आप बतलावें 'रामगोपाल नामका आप के भाई था न—,,

भाई का नाम सुनतेही श्यामा के आंखों में आंसू भर आए और मोह बश उस का कण्ठ रुक गया। उस ने गद्गद् स्वर से कहा " हां था तो परन्तु आज सोलह सत्तरह बरष से उस का कुछ भी पता नहीं है—,,

उसी का हाल पूछने के लिए आज हमने आप को कष्ट दिया है। चीन के सर्कारी टापू हांग कांग में वह व्यापार करता था। दो मास के करीब समय व्यतीत हुआ कि उस का वहां देहान्त हो गया। मरते समय उस ने अपना एक मृत्यु पत्रादेश (will) वहां के अफ़सर के पास लिख कर भेज दिया था। वही पत्र मेरे पास कल आप को

देने के लिए आया है ? और इसी लिये आज आप यहां बुलाई गई हो ,, ॥

"हाय क्या ? मेरा भाई मर गया–,, श्यामा की देह मे एक दम पसीना निकल आया। उस का मुंह पीला पड़ गया और रो रो कर कहने लगी " हाय रे हाय ! भाई, क्या अन्त समय में भी परदेश ही में रहे ? अब तक हमें तुम्हारे मिलने की आशा थी आज भेट होगी कल भेट होगी परन्तु––,,

इस प्रकार रो रो कर श्यामा ने बंगले भरके आदमियों को कंपा दिया। साहबने कहा अब आप धीरज धरो रोने धोने से काम नहोगा। शोक करना वृथा है। अब आप के रोने पीटने से वह लौट नहीं सकते। अब तो हृदय कड़ा कर के दुःख सहना ही चाहिये,,। इतना कहकर साहब ने वह विल श्यामा के हवाले किया उस में यह लिखा हुआ था "कि नीचे लिखी हुई हमारी जायदात हमारी बहन श्यामा को जो काशी में मणिकर्णिका घाट के समीप रहती है मिले,, ।

बैंक आफ फ्रेंच में १० लाख रुपया।

बैंकआफ हांग कांग में २½ लाख रुपया।

आफ्रीका की जी० पी० लाक कंपनी में १०८० के दस हिस्से।

अमेरिकन काटन मिल्स न्यूयार्क में १००८२ के बीस हिस्से।

नक़द १ लाख १४ हज़ार रुपया।

"नक़द रुपया हांग कांग के सर्कारी ख़ज़ानों में जमा है वहां से आप मंगा सकती हैं। बाकी का धन बैंक और मिल्स के मनेजरों के पास पत्र भेज कर आप अपने नाम पर करवा लीजिए। आप के पत्रों की तस्दीक जो आप बैंक और मिल्स के मनेजरों के पास भेजें गी मैं कर दूंगा ,,

श्यामा यह सब समाचार चुपचाप बैठे बैठे सुनती रही और मन में सोचती रही कि क्या इतना धन मुझे मिलेगा ? मैं सोती हूं या

जागती ? मैं अपने भाई के दुःख में बैठी रो रही हूं या क्या ? मुझे कुछ भी नहीं मालूम होता।

साहबने सारे काग़ज़ जो वहां से आये थे श्यामा को देकर उनसे उनकी रसीद लिखवा ली। श्यामाने सारे काग़ज़ पत्र साहब के पास से लेकर अपनी जेब में रखलिया। और इस विषय में सहायता देने की बाबत साहब को अनेक धन्यवाद दिये। बैंक और मिल्स के मनेजरों के पास पत्र भेजने की बाबत भी श्यामा ने साहब से प्रतिज्ञा की और गाड़ी पर बैठ कर घर को विदा हुई।

६

गङ्गाजीके किनारे एक छोटासा बंगला बना है। उनके सामने एक बगीचा लगा है। बंगला ख़ूब अच्छी तरह सजा हुआ है। उसके हाल में दीवारों के किनारे २ बड़े २ विद्वान् पुरुषों शकुन्तला रम्भा इत्यादि प्राचीन रमणियों और अङ्गरेज़ी मेमों के रङ्गबिरङ्ग के चित्र लगे हुए हैं। बीच में झाड़ फानूस और बिजली के दो लेम्प लटकते हैं। हाल के किनारे वाले कमरे में एक छोटासा पुस्तकालय है। पुस्तकालय के बांई ओर सुन्दरी के रहने का कमरा है। हाल के दहिने ओर जो दो कमरे हैं उनमें से एक में बनवारी और दूसरे में श्यामा रहती है। रामगोपाल का सारा धन पाकर अब बनवारी का जीवन बड़े सुख से बीतता है। सुन्दरी को भी कोई दुःख नहीं है। परन्तु सुन्दरी क्या सचमुच सुखी है ? बिलकुल सुखी नहीं अब यह सुन्दरी पहिलीसी सुन्दरी नहीं है। उसके माता पिता उसकी आकृति देखकर बड़े विस्मित थे कि इसको क्या हुआ है ?

बनवारी पहले वाला किराए का मकान छोड़ कर अब गङ्गाजीके किनारे यह नवीन बंगला मोल लेकर दो बर्ष से सुख पूर्वक रहते हैं। उनको अब किसी प्रकार का दुःख नहीं है। अब उनकी एक मात्र इच्छा--कि सुन्दरी का ब्याह किसी प्रकार किसी उत्तम पुरुष के साथ हमारे सामने हो जावे बस--रात दिन बनवारी और श्यामा दोनों इसी चिंता में मग्न रहते थे कि लड़की का जल्द ब्याह हो जावे। क्योंकि

लड़की की अवस्था इस समय अनुमान १६-१७ बर्ष के होगई थी। ठाकूर कृष्णकुमार कहां गए उनका कुछ भी पता नहीं। दूसरे जगहों से ब्याह की बात चीत होने लगीं। बड़े २ धनी रूपवान् अपनी २ इच्छाएं सुन्दरी के साथ ब्याह करने की प्रगट करने लगे। ऐसा कौन अभागा पुरुष होगा जिसकी इच्छा सुन्दरी सरीखी गुणवती, रूपवती स्त्री को पत्नी बनाने की नहो? बनवारी ने कई एक पुरुषों को पसन्द भी किया। श्यामा भी अपने पति के साथ सहमत थीं। परन्तु जब कभी विवाह का विषय सुन्दरी से छेड़ा जाता तब वह चुप होजाती। अन्त में बहुत कुछ कहने सुनने पर सुन्दरी ने अपनी माता से साफ साफ कह दिया कि मैं तो ठाकूर साहब के साथही ब्याह करूंगी, नहीं तो आजन्म कुंआरी रहूंगी। सुन्दरी से ऐसा उत्तर पाने पर मां बाप चुप हो रहे।

सुन्दरी दिनों दिन उदास रहने लगी। उसकी देह बिलकुल सूख गई। वह सदैव चिन्ता सागर में निमग्न रहती। कभी २ अपने मनही मन कहती कि ठाकूर साहब को मैने धन पैदा करके लाने पर ब्याह करने को कहा था वही धन आज हमारे पास सुखी रहने के लिये काफ़ी है। सुख के सारे सामान—नौकर चाकर, कपड़ा लत्ता, गहना गुरिया सब कुछ हमारे पास मौजूद हैं यदि हैं नहीं तो डाक्टर साहब—इसी प्रकार डाक्टर साहब का स्मरण करके रोया करती थी।

परन्तु आज यह क्या नया गुल खिला! सवेरे डाकियेने एक चिट्ठी लाकर बनवारी के हांथ में दी। बनवारी ने पत्र खोल कर पढ़ा और अपनी पत्नी श्यामा को सुनाया उसमें यह लिखा था।

महाशय;

ठाकूर कृष्णकुमार ग्वालियर से आकर नैपाली खपरा मुहल्ले में ठहरे हुये हैं। उनका विवाह जल्द होने वाला है। सब तैय्यारियां हो चुकी हैं। उनका बहुतही जल्द ब्याह होजायगा।

आप का..............

एक हितैषी

यह पत्र जैकिशोर रईस सिडोली ने भेजा था। इस पत्र भेजने के दो उद्देश थे। प्रथम यह कि डाक्टर कृष्णकुमार के विवाह का समाचार जब सुन्दरी को मालूम होगा तब वह घबड़ा कर जल्द ब्याह करने पर राज़ी होजायगी। दूसरे, पीछे बनवारी को किसी प्रकार प्रसन्न करके सुन्दरी का ब्याह अपने लड़के से कर लेंगे। इससे उनकी कुल धन सम्पत्ति हमारे हाँथ आएगी।

बनवारी और श्यामा को इस पत्र पाने पर बड़ा दुःख हुआ। सुन्दरी कमरे में बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। श्यामा ने उसके पास जाकर वह पत्र दिखलाना चाहा कि इतने में दरवाज़े पर गाड़ी आने की आवाज़ सुनाई पड़ी। श्यामा उलटे पैरों सुन्दरी के कमरे से दरवाज़े पर लौट आई। क्या देखती है कि एक युवा पुरुष गाड़ी पर से उतर कर बंगले की ओर आ रहा है। नज़दीक आने पर मालूम हुआ कि यह तो हमारे पुराने परिचित डाक्टर कृष्णकुमार हैं। बनवारी ने कमरे से बाहर निकल कर डाक्टर कृष्णकुमार का स्वागत किया।

डाक्टर साहब ने कहा "कहो साहब आप कैसे हो। अच्छे हो न?„

बनवारीने बड़े नम्र भाव से कहा "हां' मैं आपकी कृपासे प्रसन्न हूं; कहिये आपका क्या हाल है?„

"मैं भी ईश्वर कृपा से प्रसन्न हूं„

डाक्टर साहब के आने से बनवारी और श्यामा को बड़ा आनन्द हुआ।

कुशल प्रश्न पूछने के बाद बनवारी ने पूछा "कि इतने दिनों तक आप कहां रहे?„

डाक्टर कृष्णकुमार ने उत्तर दिया "कि ग्वालियर दरबार की ओर से पत्र आने पर मैं वहां चला गया था मैंने वहीं इतने दिन काम किया। मैं वहां दरबार अस्पताल में असिस्टेंट सरजन था। दैव योग से मुझे वहाँ निज के काम में भी बड़ा लाभ हुआ; परन्तु यह तो कहिये सुन्दरी कहां है?„

श्यामा ने उत्तर दिया "वह अपने कमरे में लेटी है। आज उनके सरमें दर्द होता है। शायद वह औंधा गई होगी। क्या; सरमें दर्द होता है? खैर, कुछ हर्ज नहीं। मैं उसे अभी देखना चाहता हूं।,, बनवारी ने यह सुनकर उन्हें भीतर जाने की आज्ञा दी। डाक्टर सुन्दरी के पास कमरे के भीतर गये। सुन्दरी उदास, आंखों में आंसू भरे, मुख नीचा किये, हाथ पर गाल रक्खे बैठी कुछ सोच रही थी।

"कहो क्या हाल है? आपकी तबियत कैसी है?,, डाक्टर साहब ने एक दम जाकर यही सवाल किया।

"नहीं' कुछ नहीं डाक्टर साहब,,। ऐसा कह कर वह कुरसी पर से उठ बैठी और उदास भाव से कहा "ज़रा सर दुखता है।,,

"ओह! तुम्हारे मुह पर से हमें साफ दिखाई पड़ता है कि तुम बहुत दिनों से बीमार हो,, ये शब्द डाक्टर साहब ने बहुतही समीप जाकर कहे।

"अजी नहीं" सुंदरी ने रूखे भाव से उत्तर दिया।

डाक्टर साहब टकटकी बांध कर सुन्दरी की ओर देखने लगे। सुन्दरी ने अपना मुख लज्जा के मारे नीचा कर लिया और मलीन मुख किये निराश और दुःखी होकर एक किनारे खड़ी होगई। थोड़ी देर तक दोनों पाषाण मूर्तिवत् चुप चाप खड़े रहे। दोनो में से किसी एक के भी मुख से शब्द नहीं निकलता था मानों कसम खाकर खड़े हुये हैं। अन्त में डाक्टर नेही बोलना आरम्भ किया "कि तुम्हे मालूम है कि ग्वालियर से काहे के लिये आया हूं। अब शीघ्रही हमारा विचार व्याह करने का है और अब मैं अपनी पत्नी अपने साथ ले जाऊंगा।,,

उपरोक्त वाक्य सुनकर सुन्दरी की क्या दशा हुई उसकी कल्पना सहजही ध्यान में नहीं आसक्ती। उसने अपने दुःखी हृदय के वेग को रोक कर कम्पित स्वर से कहा "डाक्टर साहब' मैं आप के व्याह में बड़ी खुशी से आती, परन्तु क्या करूं मेरा स्वास्थ ठीक नहीं है; मैं इस

शुभ अवसर पर आप के यहां नहीं आ सकूंगी इस कारण क्षमा मांगती हूं । पर हां इतना अवश्य कहती हूं कि आप व्याह होजाने पर एक दिन अपनी पत्नी को यहां अवश्य लाइयेगा । मैं आज सेही आपको निमंत्रण देती हूं उसे देखने की मुझे बड़ी इच्छा है—,,

"मैं उसे आजही आपको दिखा सक्ता हूं वह यहीं है । चलो, मैं आजही तुम्हारी और उसकी पहचान करा दूं ।,,

ऐसा कह कर डाक्टर ने सुन्दरी का हाथ पकड़ लिया और उसे समीप के एक आइने के पास ले जाकर खड़ा कर दिया और कहा "यह देखो मेरी प्रिय पत्नी; सुन्दरी !! प्यारी सुन्दरी !!! क्या हम को कभी उसदिन का विस्मर्ण होगा जिसदिन पहले पहल दर्शन हुये थे और क्या वह दूसरा दिन भी हमें कभी भूल जायगा जबकि तुमने धन पैदा करके लाने को हमें आज्ञा दी थी ? आज ईश्वर को अनेक धन्यवाद है कि जिसने हमारी सब आशाएं पूर्ण कीं । तुमको सुखी रखने की सामर्थ अब ईश्वर ने मुझे दी है । कहो अब तुम हमारी हो न—,,

डाक्टर के कन्धे पर हाथ धर कर मुख नीचा करके सुन्दरी ने मुस्कराहट द्वारा मानों डाक्टर साहब का कहना स्वीकार किया । डाक्टर साहब ने भी प्रेमाशक्त होकर उसका मुख चुम्बन किया और अपने हाथ की अंगूठी सुन्दरी के हाथ में पहना दी । ये दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त होकर अपनी मरज़ी से दाम्पत्य बनने की पवित्र आशा माता पिता को प्रगट की । दृढ प्रेमडोर में बंधने के लिये माता पिता ने इन्हें बड़े हर्ष के साथ आज्ञा दी । शीघ्रही दोनो का विवाह बड़े ठाठ, बाट से होगया ।

डाक्टर कृष्णकुमारने ग्वालियर जाने का विचार परित्याग कर दिया । सुन्दरी के सुंदर बंगले में वे आनन्द पूर्वक रहने लगे । अपना निजका औषधालय भी इन्होंने काशी में खोल दिया और वहीं डाक्टरी करने लगे ।

ईश्वर ने इनको यहांभी सहायता दी । इनकी डाक्टरी काशी में खूब चलने लगी । डाक्टर कृष्णकुमार के भाग्य का आज क्या कहना है । सद्गुणी, साध्वी परमसुन्दरी पत्नी, अपरम्पारधन सम्पत्ति, मान मर्यादा, प्रतिष्ठा, उद्योग में यश--कीर्ति-धन प्राप्ति और इसमें भी सोने में सुगन्ध--दो छोटे२सुन्दर और सुशील बालक,-अब कहां तक उनके भाग्योदय का वर्णन करें क्योंकि अब उनके भाग्योदय का वर्णन करने में हमारी लेखनी असमर्थ है ।

सूर्यकुमार वर्मा

"वायु" और 'अग्नि' शब्द स्त्री लिङ्ग क्यों हैं ?

संस्कृत पुल्लिंग शब्द 'वायु' से प्राकृति में "वाऊ" होता है । 'वायु' प्रकृत हिन्दी नहीं है; अर्थात् संस्कृत से प्राकृत और प्राकृत से हिन्दी नहीं है । वरन् नई हिन्दी में जिसे हम साधु-हिन्दी कहते हैं संस्कृत से सीधे आया है । इसी प्रकार 'अग्नि' भी हिन्दी नहीं वरन् संस्कृत है और नई हिन्दी में संस्कृत से लाया गया है । 'वायु' के ठौर प्राचीन हिन्दी में बाई, और उसी का रूपान्तर "वाय" शब्द थे; और अग्नि की ठौर 'आगी, और 'आग, ।

संस्कृत में पुल्लिंग रहते हुये ये हिन्दी में स्त्री० क्यों हुये इसका उत्तर तो किसी तरह दिया जा सकता है पर और ऐसे परिवर्त्तनों का कोई ठीक कारण नहीं कहा जा सकता । 'आत्मा, * जो संस्कृत से हालही में हिन्दी में लाया गया है क्यों स्त्री लिङ्ग सा वर्त्ता जाता है; अथवा 'मित्र, संस्कृत में क्लीव क्यों हुआ ? इसका उत्तर यही होसकता है कि लिङ्ग का प्रयोग लोक-व्यवहार पर निर्भर है । व्याकरण उसके लिये-संस्कृत, प्राकृत या हिन्दी में-मेंड़ नहीं बांध सका और न कभी बांध सकैगा ।

* 'आत्मा' की शुद्ध हिन्दी 'आप' है ।

संस्कृत में स्त्री लिङ्ग शब्द 'वातिः' † है। इसी से अनादि 'त्, का लोप होकर 'वाई, (=वाय) शब्द होगा। 'वाई, सर्वदा हिन्दी में भी स्त्री लिङ्ग रही। नई हिन्दी में जब इस पुराने शब्द को उठाकर 'वायु' प्रयुक्त किया गया तो पुराने अभ्यास के अनुसार और सादृश्य के कारण 'वायु' भी स्त्री लिंगही सा वर्त्ता गया।

संस्कृत के बहुत से पुल्लिंग और क्लीब शब्द प्राकृत में ईकारान्त होने पर स्त्री लिंग होगये हैं। यथा–

संस्कृत	प्राकृत
अक्षि–नपुंसक	अच्छि–नपुं० पर, अच्छी (अक्खी) स्त्री०
अञ्जलिः–पुं०	अञ्जली–स्त्री०
अंत्रस्–न०	अन्त्री, अंतड़ी – स्त्री०
वलिः–पुं०	वली–स्त्री०
पृष्टम्–न०	पिट्ठं–न० पर, पीठ–स्त्री *

बहुत से ऐसे भी शब्द हैं जो संस्कृत से प्राकृत होने में संस्कृत के समान लिंगवाले और स्त्री लिङ्ग दोनों हैं जैसे–

सं०	प्रा०
कुक्षिः–पुं०	कुच्छी–पुं० और स्त्री० (=हिन्दी कोख, कोख)
ग्रन्थि–पुं०	गण्ठी–पुं० और स्त्री०
बाहुः–पुं०	बाहू–पुं० बांह–स्त्री०

सं०			प्रा०
			अट्ठिअं–न०
अस्थिकम्–न०	...	...	... अट्ठी–स्त्री०
			(=हिन्दी "हड्डी")*

पहिले उदाहरण के शब्द जो प्राकृत मे स्त्री लिङ्ग हो गये हैं हिन्दी में भी स्त्री लिंग ही हुये। और दूसरे समुदाय के, जो प्राकृत में पुल्लिंग और स्त्री लिङ्ग दोनो थे, हिन्दी में अकेले स्त्री लिंगही हो रहे। इस्से स्पष्ट है कि संस्कृत से उतरने में शब्दों की स्त्री लिंग हो जाने की प्रबल प्रवृत्ति थी। 'अग्निः' से प्राकृत 'अग्गी' हुआ पर उस समय तक अग्निदेव का पुंस्त्व लोग नहीं भूल गये थे और ईकारान्त होते हुये भी 'अग्गी' पुलिङ्ग बना रहा। पर उसी प्रवृत्ति के अनुसार हिन्दी "आगी" (=आग) हो जाने पर यह भी औरों के समान स्त्री लिङ्ग हो गया। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत और भी बहुत से शब्द जो संस्कृत या प्राकृत में स्त्री लिङ्ग नहीं थे हिन्दी में पहुंचते पहुंचते स्त्री लिङ्ग हो गये जैसे–

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी	साधु–हिन्दी
देहः–पु०	देहो–पुं०	देही–स्त्री०	देह–स्त्री०
विन्दुः–पु०	विन्दू–पुं० विन्दु–न०	बूंदी–स्त्री०	बूंद–स्त्री०
शपथम्–न० शपथः–पु०	सबहं सवहो	सौंह–स्त्री०	*

जब हम संस्कृत से प्राकृत होने में ही शब्दों का लिङ्ग परिवर्त्तन पाते हैं; जब हम आज भी 'आत्मा' को स्त्री लिङ्ग होता हुआ देखते हैं; जब हम देख रहे हैं कि हिन्दी-भाषी जन समुदाय, जहां तक हो सकता है, शब्दों को आज भी स्त्री लिङ्ग करके बोलते हैं * जैसे पुस्तक

* Dr. Hoernle's Comparative Grammar—Pages 182—183.

रेल ट्रेन आदि ते इस प्राकृत से हिन्दी होने में इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध कैसे आशा कर सकते हैं कि हिन्दी शब्दों का लिङ्ग प्राकृत के अनुरूप होगा ?

काशी प्रसाद
मिर्जापुर

पूर्व और पश्चिम।

१

हे हे हिमाऽद्रितनयापति हे हिमेन्द्र।
योगीश गङ्गाधर हे सुरेन्द्र॥
त्रैलोक्य कान्तिकर इन्दु ललाट धारी।
हे विश्वरूप इक बात सुनो हमारी॥

२

देखो सुरेश करिनेकु दया विचारो।
दीजो नशाय दिशि को यह रार सारो॥
वादाविवाद सुनि पश्चिम को महेश।
मानो सुदेश अथवा पुनि पूर्व देश॥

३

प्राची दिशा भुवन घोर तमान्त कारी।
अस्ताचलादपर दिब्य दिनेश हारी॥

आनन्दराशि इक दिव्य विकाश लावै ।
घोरान्धकार युत अन्य विपद् बढ़ावै ॥

४

सौरभ्य युक्त अति शीतल मन्द गामी ।
वात प्रमोद कर स्निग्ध तपः प्रशामी ॥
पूर्वा सदा चलत पूर्व दिगन्त ईश ।
आनन्द सिन्धु कर ऊर्मि मनो गिरीश ॥

५

उद्दण्डताप इह पश्चिम बात आनै ।
प्राणी जड़ादि सब व्याकुल हैं समानै ॥
तृष्णाकुलान धरणी कत देह दाहै ।
हा हन्त ईश जब वारिहु वारि चाहै ॥

६

पूर्वा बयारि संग वृष्टि मही सिधारै ।
प्राणी सुयोग्य बहु अर्ध मरे उबारै ॥
हा हा असह्य तप पश्चिम लूह ज्वालै ।
लाखों मनुष्य छन में यह नित्य घालै ॥

७

वर्षागमे महि सुशोभित पुष्प युक्ता ।
सर्व व्यथाऽरु तृषिताप भयादिमुक्ता ॥

सुरम्य दृश्यादि चहूं दिखावै ।
पै सर्व एव वह पूरव से हि पावै ॥

८

सूखैं तड़ाग अरु निर्झर कूप वापी ।
बल्ली लतादि नहिं दीसतु हैं कदापि ॥
आंवा समान घर हर्म्य मनो पजावा ।
है मूल एक सब को यह लूह दावा ॥

९

प्राची दिशा शुचि कलागुण केर धाम ।
श्रीदेवि भारति यहां विरजैं मुदाम ॥
सर्वाङ्ग पूर्ण सुख संपति राशि भूरी ।
प्राची दिशैव कृषि आस करै सुपूरी ॥

१०

प्राची दिशा प्रभु ऽथवा तब पूर्व देश ।
ताते गुण ग्राम भरी महेश ॥
त्वत्पृष्ठ भागगत पश्चिम देश कैसे ।
तत्तुल्य होय ? कण हेम सुमेरु जैसे ॥

११

है सत्य बात यह पूरव देश नीको ।

याके समान नहिं भावत अन्य जीको ॥
कोऊ विपक्ष मति जो विपरीत भाखैं ।
सत्यानुरोध मन में तनिकौ न राखैं ॥

१२

यद्देशजः पवन पालत लोक सारे ।
कार्पण्य राशि कंह नाशि घड़ी मझारे ॥
तद्देशजा किमुनरा सुखदान होंही ।
जो भाग्य शील गुणखानि लखात मोहीं ॥

१३

हे हे कृपामय दयानिधि दीन बन्धो ।
हे शम्भु ईश शिव हे करुणैक सिन्धो ॥
स्वीकार होय विनती यह "श्रीश" केरी ।
सौभाग्य पूर्व कर नित्य बढ़ै घनेरी ॥

श्री कान्त पाठक

कर्तव्य परायणता SENSE OF DUTY

बड़े २ उत्कृष्ट गुण जिन से मनुष्य समाज में माननीय होता है जिन के अभाव से सब ठौर निरादर पाता और हेठा समझा जाता है—उन्में कर्तव्य परायणता का होना गुण सोपान की पहिली सीढ़ी है—पहिली सीढ़ी इसलिये इसे कहते हैं कि जब यही मालूम नहीं है कि हमें क्या करना उचित है और जिसके करने की ज़िम्मेदारी हम पर है त्रुटि या चूक होने से उसका हिसाब अन्तरात्मा को हमे देना होगा तब हम विद्वान् बड़े धर्म निष्ट भी हुये तो क्या—कर्तव्य

परायणता के कई एक अवान्तर भेद हम यहाँ नहीं लेते जिस्में जुदी २ जाति के लोगों में अलग २ मत भेद हैं-कितनी बातें ऐसी हैं जिन्हे हम हिन्दुस्तान के रहने वाले कर्तव्य मानते हैं पर इङ्गलैंड तथा योरोप के और २ देश फ्रान्स जरमनी इत्यादि के लोग उसे अवश्य कर्तव्य न समझेंगे-जैसा पुत्र के लिये बाप मां की सेवा और अपनी सब कमाई उनके अर्पण करना या अपने छोटे तथा असमर्थ भाइयों और कुटुम्ब को पालना पोखना यहां हिन्दुस्तान में एक कर्तव्य कर्म है और न करने पर निन्दा है वैसा यूरोप के इंगलैंड फ्रान्स आदि देशों में नहीं-अंगरेज़ों में बाप मां की कुछ विशेष खबर न ले सर्वस्व अपनी मेंम साहबा को सौंप देना महा कर्तव्य परायणता है-यहां ऐसा करने से समाज में निन्दा है-यहां कुलवती स्त्रियों के लिये बात चीत और संलाप एक ओर रहे घूंघुट के ओट से भी किसी पर पुरुष को देखना निन्दनीय हैं वरन सूर्य चन्द्रमा भी उन्हे न देख पावैं यहां तक असूर्य पश्या होना कर्तव्य परायणता है जैसा किसी कविने कहा है ॥

"पदन्यासो गेहाद्वहिरहिफणारोपणसमो ।
निजावासादन्यद्भवनमपरद्वीपगमनम् ॥
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः ।
पुमानन्य कान्ताद्विधुरिव चतुर्थी समुदितः ॥

कुलवती स्त्रियों का घर से बाहर पांव काढ़ना वैसाही है जैसा सांप के फन पर पांव रखना ; अपने घर से किसी दूसरे के घर कभी जाना तो मानो द्वीपान्तर में जाना है ; उन के मुह की बोल दूसरे के कान को सुनने के लिये वैसाही अप्राप्य है जैसा सूम का धन दूसरे को नहीं मिल सक्ता-उन का किसी परपुरुष की ओर निहारना वैसाही है जैसा भादों के चौथ के चान्द का देखना-और भी रस मंजरी में स्वकीया का उदाहरण इस भांत कुलवती स्त्रियों के बर्ताव के सम्बन्ध में दिखाया है-

"गतागतकुतूहलं नयनयोरपांगावधि स्मितं कुलनतभ्रुवा मधर एव विश्राम्यति । वचः प्रियतमश्रुतेरतिथिरेव कोपक्रमः कदाचिदयिचेत्तदा मनसि केवलं मज्जति" ॥

नेत्र के कटाक्षों का इधर उधर चलाना आंख के कोनोंही तक में; कुल बधू जनों का हसना होठों के फरकनेही तक; उन का बचन केवल प्राणनाथ अपने पति के कानोंही तक; नये आये हुये पाहुने की भांत क्रोध यदि कभी आया भी तो मनहीमन मसोस के रह गई-व्यय में मुक्त हस्त न हो घर के काम काज तथा शिशु पालन में प्रवीणता आदि उत्तम गुणों की खान हिन्दू ललनाओं का अखण्ड पुण्य और उनका पवित्र चरित्रही भारत को इस गिरी दशा में भी करावलम्ब देते सर्वथा अधःपात से इसे बचा रहा है-जिनके चरित्र पालन की प्रशंशा में किसी कवि ने ऐसा भी कहा है-"अपि मां पावयेत्साध्वी स्नात्वेतीच्छति जान्हवी" यह साध्वी हमारे में आय स्नान कर हमें पवित्र करे ऐसा जगत् पावनी जान्हवी गंगा भी चाहा करती हैं——

यूरोप देश निवासियों को इसमें कुछ भी कर्तव्य परायणता नहीं समझी गई-यहां लौं सभ्यता ज़ोर किये हुये है कि किसी की मेम साहबा को कोई बग्घी पर चढ़ाये दिन भर घूमते और सैल सपाटा करते रहें कोई क्षति नहीं-अस्तु इसतरह की एक २ जाति की अलग २ कर्तव्य परायणता को जुदे २ देशों की जुदी २ रिवाज और अपने २ समाज के भिन्न २ क्रम या दस्तूर मान हम उसे कर्तव्य परायणता न कहेंगे बल्कि कर्तव्य परायणता उसे कहेंगे कि जिसके न करने में प्रत्यवाय अथवा प्रायश्चित है जैसा ब्राह्मण के लिये सूर्योदय के समय सन्ध्योपासन कर्तव्य कर्म है और उसके न करने में प्रत्यवाय है-कर्तव्य पर ध्यान और समय का उचित अनुवर्तन Punctuality दोनों का साथ है-सच पूछो तो हम इन दोनों से च्युत होगये हैं जो अपने समय को ठीक रखना या पालन करना जानता है और अपने वक़्त को बेजा नहीं

खोता वही कर्तव्य परायण भी भरपूर रह सक्ता है और ये दोनों इस समय हमारे शासन कर्ता में अच्छीतरह पाये जाते हैं-जब हम इन्हे अपना शिक्षा गुरु अनेक सामयिक सभ्यता की बातों में मान रहे हैं और उन्हे अपना गुरुगुरु समझ उनका अनुकरण कर रहे हैं तो इन दोनों में भी उनके अनुयायी क्यों नहीं ? किन्तु यह भी कुछ देश के भाग्यही कहेंगे कि यहां के लोग बुराई का अनुकरण पहले और बहुत जल्द करने लगते हैं भलाई को भुलाय उस ओर कभी झुकतेही नहीं-जित जेता का अनुकरण करते हैं यह प्राकृतिक नियम की भांत हो रहा है और यह कुछ यही नहीं वरन् सब देश और सब जाति के लोगों में देखा गया है-जब से मुसल्मान यहां के जेता हुये उस समय से हम उनकी चाल ढाल; नशिस्त बरखास्त के काइदे न केवल उनकी अरबी फारसी तथा उर्दू भाषा बरन् दीन इसलाम को अब तक अपनियाते आये आर्य से अर्द्ध यवन हो गये; यहां लौ कि मुसल्मानों को अपना एक अंग बना लिया अब पचास साठ बर्ष से हिन्दू मुसल्मान दोनों अपने नये जेता का अनुकरण कर रहे हैं, किन्तु उन्में जो कुछ त्रुटि है केवल उसी का उन्में भलाई क्या है उस्का नहीं-उनका सा अध्यवसाय धुन बांध के किसी काम को करना विघ्न परविघ्न होता रहे पर जिसे आरम्भ किया उसे करी के तब छोड़ना ; स्वजाति पक्षपात ; विद्याभ्यास ; ऐक्य ; साहस ; धैर्य ; वीरता ; विचार की दृढ़ता ; आदि उनके अनेक गुणो की ओर कभी ध्यान नहीं देते उनकीसी भोग लिप्सा पान दोष इत्यादि को अलबत्ता अपना करते जाते हैं-यावत् कर्त्तव्यों में वर्तमान गिरी दशा से अपना उद्धार महा कर्त्तव्य परायणता है किन्तु इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता प्रत्युत उसी को कर्त्तव्य मान रहे हैं जिस्में हमारा अधिक बिगाड़ है और गतानुगतिक न्याय के अनुसार भेड़िया धसान के समान आंख मूंद उधरही को बराबर चले जाते हैं--सेंधिया और हुल्कर के पूर्व पुरुष इसी कर्त्तव्य परायणता के बदौलत इस उत्तम पद पर कर दिये गये; ये दोनों पेशवा के घर के सेवक थे-इतिहासों में कितने इस्के उत्तम उदा-

हरण पाये जा सकते हैं इस समय भी यद्यपि देश बड़ी गिरी दशा में आ गया है पर ढूंढ़ने से बहुत से अच्छे उदाहरण मिल जांयगे-जिन्में कर्त्तव्यपरायणता होगी उनमें समय का सद्नुष्ठान Punctuality भी अवश्य होगी दोनों उत्तम गुणों का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है बिना एक के दूसरा कभी रही नहीं सक्ता-देश के कल्याण के लिये इन दोनों का उस देश के निवासियों में आना स्वाभाविक गुण होना चाहिये ईश्वर प्रसन्न हो कर हम लोगों में कर्तव्य परा यणता स्वाभाविक गुण पैदा कर देतो देश का उत्थान सहज में हो जाय-सर्व साधारण की दशा के परिवर्तन की यह पहली सीढ़ी अवश्य कही जायगी और सीढ़ी २ चढ़ते जांय तो कदाचित् एक दिन शिखर पर भी चढ़ बैठें तो अचरज क्या-

शिशुपाल वध नाटक

नान्दी पाठ।

जै जै जग तारन पतित उबारन, श्रीनिवास सकलारतिहर।
जै नटनागर करुणासागर, दीन दयापर धरणीधर॥
जै दामोदर जै गुणमन्दिर, जै मधुसूदन कमलावर।
पाहि पाहि शरणागत वत्सल, द्रवहु दयामय इन सबपर॥

सूत्र धार का प्रवेश

आहा आज इस समाज की कैसी शोभा हो रही है इस में एक २ महानुभाव हमारा अभिनय देखने के उत्सुक कीर्ति के स्तम्भ रूप हो रहे हैं; दिग् दिगन्त व्यापी जिनका यशः सौरभ सब ओर फैला हुआ पुण्य श्लोक महात्माओं के नाम संकीर्तन पुण्य पुञ्ज सदृश जगत् को पवित्र कर रहा है (थोड़ा ठहर सोच कर) ऐं यह मैंने क्या कहा पुण्य श्लोक तो इस संसार में दोही एक ऐसे हो गये जो अपने पवित्र चरित्र से प्रातः स्मरणीय पुण्यश्लोक केवल ज़बानी जमा खर्च की तरह नहीं कहे गये अपिच आदर के साथ पुण्यश्लोक वास्तव में माने भी गये-

"पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठरः ।
पुण्यश्लोकाच वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः" ॥

इतनाही नहीं बरन जो मनुष्य का तन धारण किये हुये भी अपने लोकोत्तर सत् और पवित्र आचरण से देव तुल्य माननीय हो गये; अस्तु अच्छी याद आई तो इन्ही पुण्य श्लोकों में किसी एक के पुण्य संकीर्तन से आज इस सभा को लुभावें--अच्छा तो अपने साथी नटों को बुलाय जो कुछ करना है उसकी भूमिका के लिये उन्हें तैयार होने को कहैं-क्या भैया पिचुमन्द और रसाल--

(दोनों नटों का प्रवेश हाथ जोड़) क्या आज्ञा है-

(सूत्र धार फिर उसी श्लोक को पढ़) इन्में किसके चरित्र के अभिनय से आज तुम इन महाशयों का मन अपनी ओर खीचा चाहते हो-

पिचुमन्द (हंसकर) सब लोग अपनी अवस्थाही के अनुरूप रहा चाहते हैं- हमारे सम्पादक महाशय अब बूढ़े भये न, तो अब उन्हे केवल पुण्य संकीर्तनही रुचता है-श्लोकोक्त पुण्य श्लोकों में नल और उनकी सहचारिणी धर्मपत्नी दमयन्ती के चरित्र को प्रदीप की पहिली जिल्दों में नाटक के आकार में बांध अपनी कलम की कारीगरी बहुत दिन बीते कि संपादक महाशय दिखला चुके हैं; अब इस समय महाराज युधिष्ठिर और जनार्दन कृष्णभगवान् के चरित्र का अभिनय उपयुक्त होगा-

रसाल-तो किस कवि का ऐसा प्रबंध है जिस्में दोनों के चरित्र की चरितावली का वर्णन हो (थोड़ा ठहर याद कर) हां अच्छी सुध आई-कवि कुल मुकुटमणि-महा कवि माघ का ऐसा एक प्रबन्ध है जिस्में दोनों के चरित्र गतार्थ हो जांयगे-धर्म धुरीण धर्मावतार महाराजा युधिष्टिर का राजसूय यज्ञ और उसी में श्रीकृष्ण महा प्रभु को गाली देते राजा के भेख में दैत्यापसद शिशुपाल का बध-हो देखो सुवर्ण के रङ्ग की पीली जटा भार को सिर से वहन करते देवर्षि नारद

श्रीकृष्ण महाराज से मिलने को आकाश में उतरे आरहे हैं तो चलो हम लोग इसके उपरान्त की लीला के लिये सज्जित हो जांय (सबगये)

॥ प्रथम अङ्क ॥

प्रथम गर्भाङ्क ।

स्थान—द्वारिका में कृष्ण भगवान् का गृहद्वार—

आकाश से उतरते नारद और निज आसन में आसीन कृष्णचन्द्र का प्रवेश—

(सांझ को डूबते हुये सूर्य के समान देवर्षि नारद जबलों आकाश से पृथ्वी पर उतरैं तबलौं भगवान् कृष्णचन्द्र उनके अभ्युत्थान के लिये पहाड़ पर जैसा बिजली उनके अपने सिंहासन से उठ खड़े हुये)

"पतत्पतङ्ग प्रतिमस्तपो निधिः पुरोस्य यावन्न भुवि व्यलीयत ।
गिरिस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः"॥
युगान्तकाल प्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत ।
तनौ ममुस्तत्र नकैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः ॥

युगान्त में प्रलय के समय समस्त ब्रह्माण्ड के जीव समूह जिसमें विस्तार पूर्वक बास करते हैं कैटभ दैत्य के नाश करने वाले उस कृष्ण भगवान् के शरीर में तपोधन नारद से मिलने का हर्ष न समा सका किन्तु पुलकावली के बहाने बाहर निकला पड़ता था और हर्ष निर्भर हो यों बोले—

कृष्ण—हरत्यघं संप्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः शुभैःकृतम् ।
शरीर भाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालात्रितयेपि योग्यताम् ॥

देह धारी हम ऐसों के लिये आप सरीखे महा पुरषों का दर्शन भूत भविष्य वर्तमान् तीनों काल की योग्यता प्रगट करता है-इसलिये कि दर्शन मात्र से पहिले का संचित सब पाप जाता रहा आगे के लिये कल्याण का हेतु है; पहिले बहुत कुछ पुण्य के काम कर रक्खा था तब श्री चरणों का दर्शन हमें मिला-तब आप ऐसे महात्मा के दर्शन की किसे अभिलाषा न होगी-

जगत्यपर्याप्त सहस्रभानुना नयान्नियन्तुं समभावि भानुना।
प्रसह्य तेजोभिरसँख्यातां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः॥

सहस्र किरण वाले सूर्य जगत् में सब ओर विना कोई रोक टोक के छिटकी हुई सहस्र किरनों से जिस अन्धकार को दूर न कर सके उस मनके मोहान्धकार को वलात्कार पूर्वक आपने अपने तेजःपुंज से न जानिये कहां हटा दिया-

आप को किसी से कुछ लेना पावना नही सर्वथा गतस्पृह होकर भी जो आज दर्शन दे मुझ पर कृपा की है तो आप क्यों आये धृष्टाता के साथ यह पूछना कुछ निरर्गल न होगा

विलोकनेनैव तवामुना मुने कृतः कृतार्थोऽस्मि निवर्हितांहसा।
तथापि शुश्रूसुरहं गरीयसी गिरो थवा श्रेयसि केन तृप्यते॥

मुनि राज समस्त पापमोचन आपके दर्शनही से यद्य पि कृतार्थ कर दिये गये तथापि गम्भीर अर्थ वाली आपकी बाणी भी हम सुना चाहते हैं-अथवा कल्याण परम्परा से कौन ऊब सक्ता है-दर्शन से नेत्र तो पवित्र होही चुके थे आप की बात सुन कान भी क्यों न पवित्र हों-

नारद--अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्ते र्महिमावगम्यते।
मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणै र्भवान्भवच्छेदकरैःकरोत्यधः॥

पुराण पुरुष गुरुर्गुरु आप की महिमा को कौन जान सक्ता है; मनुष्य का शरीर धारण करने पर तुम देवता तथा दैत्य दोनों को आवागमन दूर करने वाले अपने गुणों से सब भांति नीचे किये हुये हो-

लघूकरिष्यन्नतिभारभंगुरामम् किलत्वं त्रिदिवादवातरः ।
उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियते तरां त्वया ॥

महाराज अति भार से बोझी हुई पृथ्वी का भार हलका करने को बैकुण्ठ से आप उतरे हो किन्तु त्रैलोक्य के पालन पोषण का भार अपने ऊपर लिये इस जगती तल को और भी बड़ा बोझवाली कर रहे हो—

निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि ।
समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम् ॥

जगत् के द्रोही कंस आदि दैत्यों को नाश करने के लिये आप यदि इस भूतल में औतार न लिये होते तो जिनको ध्यानावस्थित योगी जन एकाग्र मन करके भी नहीं देख सके उनका दर्शन संसारिक जन हम सब लोग इस चर्म चक्षु से क्योंकर पाते—

उपप्लुतं पातुमदो मदोद्धतैस्त्वमेव विश्वंभर विश्वमीशिषे ।
ऋते रवेः क्षालयितुं क्षमेत कः क्षपातमस्काण्डमलीमसं नभः ॥

हे विश्वम्भर विश्व की रक्षा करने वाले मदोद्धत दैत्यों से संसार की पीड़ा दूर करने में तुम्ही समर्थ हो ; रात्रि के अन्धकार से मैले आकाश को सिवाय सूर्य देव के कौन अपने तेजोमय प्रकाश से उज्वल कर सक्ता है—महाराज बिना किसी के कहे आप स्वयं संसार को पीड़ा देनेवाले दुष्टों के नाश के लिये उद्यत हो; तथापि आप के साथ बात चीत से जो सुख मिलता है उसके लोभ से मुझे इस समय बाचाल होना पड़ा—मैं अपने को बाचाल इसलिये कहता हूं कि जब आप अन्तर्यामी घटघट में व्यापक हो कर सब के भीतर की जानते हो तो तुम्हे उसी जानी हुई बात को जनाना बाचालता नहीं तो और क्या है—तस्मात् हे उपेन्द्र इन्द्र ने समस्त संसार के उपकाराय जो कुछ कहला भेजा है उसे दत्त चित्त हो सुनने के लिये मेरी प्रार्थना

है और वह यह है कि जो पहिले हिरण्यकशिपु के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिस्के बध के लिये आपने नृसिंह का अवतार लिया फिर वही रावण हुआ तब राम होकर आपने जगत् का त्राण किया—अब वही छली जैसा नाट्यशाला में नट रूप बदल २ कर आते हैं शिशुपाल नाम से अवतरा है—

वलावलेपादधुनापि पूर्ववत्प्रवाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।

जगत् भर को जीत कर अपने बश में करने की इच्छा रखने वाला वह सबों को पीड़ा देरहा है—सच है पतिव्रता स्त्री जैसे अपने पति को पहचान लेती है वैसाही जन्मान्तर का स्वभाव भी प्राक्तन संस्कार के अनुसार दूसरे नये जन्म में भी उस पुरुष को पहिचान उसमें आजाता है—

तदेनमुल्लंघितशासनं विधेर्विधेहि कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचारविपक्त्रिमापदो विपादनीयाहि सतामसाधवः॥

इस्से विधिना के निश्चित किये हुये अवश्य होनहार को भी उलट देने वाले इस्को जल्द यमराज की नगरी का पाहुना कर दीजिये—दुराचार से जिनके विपत्ति का परिणाम आगया है ऐसे दुष्टों को आप ऐसे भले लोगों को चाहिये कि शीघ्र नाश करैं—इन्द्रका संदेसा यही मुझको कहना था सो निवेदन किया अब आपको अधिकार है—मेरे सायं सन्ध्या का समय समीप आगया इस्से मैं जाने की आज्ञा मांगता हूं—

कृष्ण—मुझे भी इन्द्र की आज्ञा शिरोधार्य है (दोनों जाते हैं—)

द्वितीय गर्भाङ्क

स्थान

सभा मण्डप

श्रीकृष्ण बलराम और उद्धव बैठे हुये–

श्रीकृष्ण कल देवऋषि नारद इन्द्रका सन्देसा जबसे कह गये तब से चित्त में शिशुपाल के प्रति क्रोधाग्नि धधक रहीथी कि अब यह दूसरी बात उपस्थित होगई– उधर मगधाधिप जरासन्ध के अत्याचार से पीड़ित कैद में पड़े २० सहस्र राजाओं का उस दुष्ट के कैद से छूटने की ब्राह्मण द्वारा प्रार्थना पत्र; इधर प्राण से भी अधिक प्यारे महाराज युधिष्ठिर के राजसूय में उपस्थित होने का आह्वान; तो ऐसी संकीर्णता में क्या करना उचित होगा उसी के परामर्श के लिये आप लोगों को आज कष्ट दिया गया है–

मेरे मन में तो ऐसा आता है कि युधिष्ठिर बिना हमलोगों के भी राजसूय में भली भांत कृत कार्य्य होसक्ते हैं इस लिये कि जिनके भीम और अर्जुन ऐसे दिग् विजयी भाई हैं उनको हमारे वहां न होने पर भी किसी तरह की त्रुटि न रहजायगी; किन्तु शिशुपाल का नित्य२ ज़ोर पकड़ते जाना अच्छा नहीं है कहा भी है– "अल्पीयसो प्यरेर्वृद्धिर्महानर्थाय रोगवत्" रोग के समान शत्रु का थोड़ा भी बढ़ते रहना पीछे बड़ा अनर्थ करता है–

सात्वती सूनु शिशुपाल हम से द्रोह रखता है इसका हमे कुछ भी पछताव नहीं है किन्तु उससे सभों को क्लेश पहुंचता है इसका हमें बड़ा दुःख है–

मुझे अपनी बुद्धि का कुछ भी अभिमान नहीं है कि हम जो कहते हैं या सोचते हैं सर्वथा सयुक्तिक है इस लिये कि–

"ज्ञानसारोपि खल्वेकः सान्दिग्धे कार्यवस्तुनि"

कोई कैसाही तत्ववेत्ता बुद्धिमान् क्यों न हो यदि अकेला है तो क्या करना उचित है कर्तव्य वस्तु में दो चित्ता होही जाता है–

बलराम–मेरे मन में ऐसा आता है कि वासुदेव ने जोकुछ कहा सद्यः उसे करीडालना मानों उनकी कही हुई बात का जवाब है–यों तो जोकुछ कहना उचित है उसे उन्होने सू के समान संक्षेप में सबकुछ कहडाला अब इसका उत्तर जो हम कहैंगे वह केवल उसीका टिप्पणा या भाष्य सदृश होगा–

"विरोधि वचसो मूकान् वागीशानपि कुर्वते
जडानप्यनुलोमार्थान् प्रवाचः कृतिनां गिरः"

चतुर लोग ऐसा चतुराई के साथ बोलते हैं कि विरुद्ध बोलने वाला कैसाही वावदूक साक्षात् बृहस्पति क्यों नहो मूक होजाता है एक बात उसके मुहसे नहीं निकलती और जो अपने अनुकूल कह रहा है वह कैसाही मन्द बुद्धि हो उसे ऐसा ढाढस होजाता है कि बोलने में चरपर हो उठता है–यों तो अभ्यास करते २ कैसाही हलाग्र बुद्धि मूर्ख हो बड़े परिश्रम के उपरान्त वह भी कुशाग्र बुद्धि होजाता है–सच तो यों है कि

तृप्तियोगः परेणापि न महिम्ना महीयसाम् ।
पूर्णश्चन्द्रोदयाकांक्षी दृष्टान्तो ऽत्र महार्णवः ॥

बड़े हौसिले वालेको बड़ा ऐश्वर्य पाकर भी तृप्ति (आसूदगी) नहीं होती समुद्र सब भांत पूर्ण होकर भी पूर्णमासी के दिन पूर्ण चन्द्र को आकाश में देख अधिक बढने के लिये लहरें लेने लगता है सो क्यों–

सम्पदा सुस्थिरंमन्यो भवति स्वल्पयापि यः ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये नवर्द्धयति तस्य ताम् ॥

जो थोड़ी सी सम्पत्ति पाय उसी से सन्तोष कर बैठ रहता है विधाता उसे उतनेही से कृतकृत्य समझ कर उसकी सम्पत्ति को अधिक नहीं बढ़ने देता–

समूलघातमघ्नन्तः परान्नोद्यन्ति मानिनः ।
प्रध्वांसितान्धतमस्तत्रोदाहरणं रविः ॥

शत्रुओं को बिना निर्मूल किये मान धन वाले अपना उदय नहीं चाहते–सूर्य अन्धकार को जड़ पेड़ से दूर बिना किये नहीं उगते–

विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा ।
अनीत्वा पंकतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते ॥

शत्रु को जब तक निःशेष न करडाले तब तक प्रतिष्ठा पाना दुर्लभ है–जल धूलि को कीचड़ में परिणत किये बिना नहीं रहता–

ध्रियते यावदेकोपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम् ।
पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयो ऽसुरद्रुहाम् ॥

जब तक एक भी शत्रु बना रहता है सुख नहीं मिलता सब देवताओं के देखते राहु चन्द्रमा को ग्रसता है–

विधाय वैरं सामर्षे नरो रौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते ते ऽभिमारुतम् ॥

वे जो ऐसे शत्रु से बैर ठान उदासीन भाव धारण कर उपेक्षा किये रहते हैं जिसके मन में पूर्व कृतअनुपकार का बैर चुकाने को चुभरहा है वह मानो फूस के ढेर में आग लगाय उसी ओर पांव फैलाय निश्चिन्त सोता है–रुक्मिणी हरण के समय शिशुपाल की जो दुर्गति की गई है उसे वह अब तक नहीं भूला–यदि आप उसे उपेक्षा कर माफ किया चाहते तो यह भी अनुचित है–

अन्यदा भूषणं पुंसां क्षमा लज्जेव योषितः ।
पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव ॥

जैसा स्त्रियों के लिये लज्जावती होना बड़ा गुण है किन्तु सुरत के समय धृष्टताही सोहती है–वैसाही क्षमा करना मनुष्य के लिये उत्कृष्ट गुण है सही किन्तु शत्रु से हार न हो इससे जहां तक बनै उसके दबाने में पराक्रम से न चूकै–

माजीवन्यः परावज्ञा दुःखदग्धोपिजीवति ।
तस्या जननि रेवास्तु जननी क्लेश कारिणः ॥

अपमान से जो दुःख होता है उसे सहकर भी जो जीते हैं ऐसे जीने से उनका न जीना अच्छा- दस महीने तक गर्भ में रह माको पीड़ा पहुंचाने वाले ऐसों का तो जन्मही न होता तो अच्छा था-

पादाहतं यदुत्थाय मुर्द्धान मधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः॥

अचेतन पदार्थ पांवकी धूलि भी पादताड़ित हो ताड़न करने वाले के सिर पर जा सवार होती है अचेतन पदार्थ धूलिको जब इतनी आन है तो सचेतन मनुष्य अपकार सह कर भी प्रसन्न और सन्तुष्ट चित्त रहा और उस अपकार का बदला चुकाने की चेष्टा न की तो उस्से पांव की धूलि अच्छी-

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलंघनीयता हेतुरुभयं तन्मनस्विनि॥

पर्वत में उचाई है तो अथाह होने का गुण नहीं है समुद्र अथाह है तो उचाई उसमे नहीं है मनस्वी वीर पुरुष में चित्त का ऊंचा और अथाह होना ये दोनों गुण इसी लिये हैं कि उनका कोई उल्लंघन अर्थात् तिरस्कार करने की हिम्मत न कर सके- निरी सिधाई भी अच्छी नही "कतौं सुधाइव तें बड़ दोषू"

तुल्ये पराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्मृदिम्नः स्फुटं फलम्।

अमृतपान के समय सूर्य और चंद्रमा दोनों ने राहु का बराबर से बिरोध किया था किन्तु राहु चन्द्रमा कोतो जल्द ग्रहण के योग में ग्रसने को दौड़ता है सूर्य को जब कभी सो यह साफ २ मुलायमियत और सूधाई का फल है चन्द्रमा सूर्य सा तेजीयान् और उग्र होता तो ऐसा न होता-

अङ्काधिरोपित मृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।
केशरी निष्ठुराक्षिप्तो मृगयूथो मृगाधिपः॥

अपने गोद में चन्द्रमा मृग को लिये है इस दया का यह फल मिला कि चन्द्रमा मृग लांछन कहलाया–सिंह मृग के झुण्ड पर निर्दय हो जा टूटता है तो सिंह को मृगाधिप की पदवी मिली–इससे निश्चय है कि जो अपने साथ बुराई कर रहा है और बैरी है उसपर कभी दया न करे न उसकी उपेक्षाही कर बैठे प्रत्युत जहां तक हो सके उसको जड़ से उखाड़ डाले–

उद्धव–यद्यपि बलराम ने जो कुछ निश्चय किया उसपर मुझे कुछ कहना केवल पिष्ट पेषणमात्र है तथापि इतना कहने का साहस तो अवश्य होता है कि ऐसी थोड़ी बात के लिये इतना आडम्बर व्यर्थ है–

आरभन्तेल्पमेवाज्ञा कामं व्यग्रा भवन्तिच।
महारम्भाः कृतधिय स्तिष्ठन्ति च निराकुलाः॥

अल्पज्ञ और पूर्ण बिद्वान् में यही तो अन्तर है कि अल्पज्ञ किसी छोटी बात केलिये भी बहुत घबड़ा उठता है और बड़े आडम्बर के साथ उसेआरंभ करता है किन्तु विद्वान् गंभीर प्रकृति वाला बड़े से बड़ा काम को भी अपने हाथ में ले स्वस्थ चित्त रहता है–उपाय करते हुये भी चौकस न रह घबड़ाने से काम बिगड़ जाता है–आखेट करने वाला अच्छी तरह जानता है कि मृग इसी रास्ते से आते जाते हैं--उन के फसाने को फन्दा उसने ठीक जगह पर लगाया पर पीछे से सो गया मृग आये चले भी गये पीछे हाथ मल पछताके रहगया–

उपाय मास्थितस्यापि नश्यन्त्यर्थाः प्रमाद्यतः।
हन्ति नोपशयस्थोपि शयालुर्मृगयुर्मृगान्॥

अनुकूल समय की प्रतीक्षा सब बातों के लिये उचित है–

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्काल विपर्ययः।
तमेव चागते काले भिन्द्याद् घटमिवाश्मना॥

जब तक समय अनुकूल नहीं है शत्रु को कन्धे पर लिये फिरा करे ठीक समय आ जाने पर उसे ऐसा पटकै जैसा घड़े पर पत्थर फेंक चूर कर डालना होता है-

कृतापकारेपि परै रनाविष्कृत विक्रियः।
असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा॥

शत्रु कितनाही अपना अपकार करता रहै पर समय अनुकूल नहीं है तो असाध्य रोग के समान उसपर क्रोध भीतर छिपाये रहै; रोग जो असाध्य होगया जिससे चङ्गा होने की कोई उम्मेद नहीं है-कुपथ्य करने पर भी जब तक शरीर में बल है उससे कोई हानि नहीं होती बल के क्षीण होतेही रोग दबा लेता है-

मृदु व्यवहितं तेजो भोक्तुमर्थान् प्रकल्पते।
प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाभ्यन्तरस्थया॥

राजा के लिये एक बारगी तेज़ी पकड़ लेना अच्छा नहीं किन्तु धीरे२ सहाय२ के जो राजनीति काम में लाता है-वह अपना काम अच्छी तरह साधता है-बत्ती दीपक के भीतर रह कर धीरे२ सब तेल उसमें का खींचलेती है-यह मत समझो कि अकेला शिशुपाल हमारा बैरी है जैसा राजयक्ष्मा रोग के साथ और बहुत से रोग लगे रहते हैं वैसाही इसके साथ भी काल यवन शाल्व रुक्मि आदि अनेक राजा लोग आप से अपनी २ बारी में बदला लेने के लिये अवसर ढूंढ रहे हैं-

बृहत्सहायाः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
संभूयांभोधिमभ्येति महानद्या नगापगा॥

बड़ों का सहारा पाय छोटे लोग भी अपने काम में कृतकार्य होजाते हैं पहाड़ी क्षुद्र नदियां भी समुद्र गामिनी बड़ी नदियों में मिल सागर के साथ संगम कर सक्ती हैं-इससे शिशुपाल को क्षुद्र बैरी मत समझो और ये सब विपक्षी राजालोग गुट बांध युधिष्ठिर के यज्ञ के विध्वंस में प्रवृत्त हैं-साथही यह भी सबको मालूम है कि पाण्डव आप के कृपा पात्र हैं-और युधिष्ठिर भी आपही के भरोसे इस भार के उठाने का साहस कर रहे हैं-इससे मेरी अल्प बुद्धि में यही आता है कि पहिले युधिष्ठिर के यज्ञही में हम सबों को चलना उचित है वहीं जरासन्ध शिशुपालआदि सबों का निपटारा होजायगा गुप्तचर जासूसों को भेज कर यह भी पता लग जायगा कि कौन आप के विपक्षी हैं और कौन सपक्षी-

श्रीकृष्ण-तथास्तु अच्छा तो आप नगर में ढिंढोरा पिटा दें कि कल राजसूय में जाने का शुभ मुहूर्त है नगर निवासी तथा हमारी यादवी सेना दल सज्जित हो जांय-हमभी चलकर उसकी तैय्यारी करें (सब गये)

ब्राह्मणों का सुधार कैसे हो ?

एक समय वह था जब ये ब्राह्मण वेद वेदांग पारङ्गत यावत् विद्या, तपस्या, सच्चरित्र, समस्त सद्गुण तथा लोक चातुरी के अथाह समुद्र के समान थे-कौन सी ऐसी विद्या, विज्ञान, कला तथा लोकचातुरी थी जिसमें ये अग्रगण्य और उन २ विद्या तथा चातुरी के सूत्रपात करनेवाले न थे-जिसमें देखो उसी में उन महर्षियों के सूत्र पाये जाते हैं-और उन्ही सूत्रों को मूल में रख पीछे के ग्रन्थकारों ने बहुत कुछ इमारत खड़ी कर उन सूत्रों के अक्षरों से न जानिये क्या २ तात्पर्य निकाल यावत् विद्या का प्रकाश करते गये और करते जाते हैं-बड़े २ चक्रवर्ती राजा सदा जिनका मुह जोहा करते थे-जब कभी उनके आश्रम या तपोवन में उन्हे जाने का अवसर होता था तो कितने विनीत भाव से

उनके आश्रमों में प्रवेश करते थे और बड़ी चौकसी रखते थे कि ऐसा नहो कि कोई चूक बन पड़े और महर्षि इन से रूठ जांय–इनके अप्रसन्न होजाने पर फिर हमारा कहीं ठिकाना न लगैगा–दुष्यन्त जब कण्व मुनि के आश्रम में गये हैं सकुन्तला नाटक के उस दृश्य से प्रगट है कि कितनी चौकसी राजा को रखना पड़ा था–

ऐसाही रघुवंश में राजा दिलीप ने जब महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में प्रवेश किया था वह भी इसी बात को दृढ़ करता है–

माभूदाश्रमपीड़ेति परिमेयपुरःसरौ।
अनुभावविशेषात्तु सेना परिवृताविव॥

बड़े शंकित चित्त इस लिये और भी रहते थे कि ऐसा नहो कि कहीं मुनि जी को क्रोध आवै और शाप देदें तो हम कहीं के न रहैं–चक्रवर्ती राजाओं की कौन कहै देव राज इन्द्र भी इनसे कांपते थे–ये वेही ब्राह्मण हैं जिनके पूर्वज बन में बैठे २ बड़े २ कायदे और कानून बना कर वहीं से राजाओं को उनके राज कार्य में रहनुमां करते थे–कदन्न सांवा नीवार और कमल की नाल आदि सात्विक भोजन स्वच्छ जल वायु के सेवन से उनका मस्तिष्क ऐसा परिस्कृत रहता था कि अपनी पैनी बुद्धि को जिस विषय मे धंसाते थे उसका अन्त कर देतेथे–कणाद, पिप्पलाद आदि जिनके नामही से प्रगट है कि जिन्हो ने अन्न का किनका और पीपर की पिपरौरी खाकर जीवन पार किया पर षोड़श पदार्थ वादात्मक तर्क शास्त्र ऐसे भारी दर्शन के सिद्धान्तों को प्रगट किया और उन शास्त्रों के आदि प्रवर्तक हुये–

सच है– "क्रियासिद्धिस्सत्वे बसति महतां नोपकरणे" बड़े लोगों को अपने बड़े काम में कृतकार्य होने के लिये उपकरण अर्थात् सामग्री की अवश्यकता नहीं रहती–बरन उनमें स्वाभाविक ऐसा एक महत्व रहता है जिस्से उनका काम पूरा हो जाता है–इन्द्रियों के दमन में तत्पर ही संसार की विषय बासना और भोग लिप्सा को बिषतुल्य समझ

बड़े २ शहरों की घनी बस्तियों से कोसों दूर रहा करते थे-सिलोंच्छ वृत्ति से अपना निर्बाह करते हुये सर्वथा निर्लोभ और निष्किंचन रह कर भी राजाओं की बड़ी सी बड़ी सम्पत्ति को लात मारते थे- बरन सांसारिक बिषयों को अपने जीवनका उद्देश्य न समझ इस श्लोक को अपने लिये मूल मन्त्र माने थे-

ब्राम्हणस्य शारीरेयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
कृच्छ्राय तपसे चैव प्रेत्यानन्तसुखायच ॥

ब्राह्मण का देह इसलिये नहीं है कि बिषय वासना में अपने को फसाय भोगलिप्सू हो बरन कृच्छ्र चान्द्रायण आदि बड़े २ व्रत और तपस्या यम नियम संयम से अपने शरीर को सुखावै जिसमें पर लोक में अनन्त सुख मोक्षपद के अधिकारी हों-

अस्तु उन्ही के बंशधर इस समय के ब्राम्हणो की ओर ध्यान दीजिये जिनके आचरण और क्रम देख किसी तरह मन में नही आता कि ये उन्ही के सन्तान हैं पूर्बज ऋषियों में लोभ का लेशभी न था ये लोभ की मुर्त्ति और खान हैं-वे बिषय बासना और भोग लिप्सा को बिष समझ अपने को उससे बचाये हुये दूर भागते थे- ये उसी को अमृत समझते हैं-वे दिन रात केवल लोकोपकार सोचा करते थे ये अपनाही पेट भरने के सिवाय और कुछ जान्तेही नहीं- उनमें आपस में कैसामेल और ऐक्य था कि समय२ इकट्ठे हो अनेक धर्म संबन्धी, समाज संबन्धी, राजकीय संबन्धी गूढ़ से गूढ़ बातों का तत्व निकालते थे- ये एका करना जान्तेही नहीं-बरन कहावत चल पड़ी है "बाम्हन नाऊ हाऊ जात देख गुर्राऊ„ अब भी अपने पूर्वजों का बुद्धि तत्व उन में बहुधा पाया जाता है जो आग की चिनगारी सा मानो- राख के नीचे छिपा पड़ा है ज़रासा उस राख को खुरिहारने से चमक उठती है-पर अपसोस इनको दक्षिणा का लोभ इतना अपने बस में किये हुये है और ऐसा अपने को इन्होंने गिरा दिया है कि ये उस

ओर कभी ध्यानही नहीं देते और नित्य २ नीचेही को गिरते जाते हैं सभी लोग इन को तके हुये हैं-हाल में बनारस के किसी अदूर दर्शी, मत्सरी ने द्रोह बुद्धि से केवल दोषही दोष देख स्वार्थान्ध प्रकाशिका नाम की एक छोटी सी पुस्तक बनाय ब्राह्मणों की खूबही जीट उड़ाया और पोल खोला है--किन्तु इनके चित्त में यह कभी धसताही नहीं कि क्यों हमारी जाति मात्र पर इतना भारी आक्षेप किया गया ये अपना दागे साँड़ से बैठे २ पागुर करते हुये केवल दक्षिणा की ओर ध्यान जमाये हुये हैं किसी कबिने अच्छा कहा है--

"नित्यं प्रसारित करो दक्षिणाशा प्रसाधकः।
नकेवलमनेनैव दिवसोऽपितनूकृतः" ॥

उस पुस्तक के लेखक की कच्ची समझ और उसकी बाल बुद्धि का उत्तर हम फिर कभी देंगे उसीके साथ हमारे ब्राम्हण भाइयों के सुधार की क्या उपाय कारगर होगी सोभी दिखावेंगे।

पावस पंचक

पावस की ऋतु आई अली दिन रैन फुहारे सी झींसी परै।
उर दाह उठै है बियोगिन के अरु भोगिन को ये अमी सी झरै ॥
चपला चमकै चौआई चलै घन घोर घटा उनड़ी सी परै।
उर बीच सिरीश किसानन के कृषि आस लता लहकी सी परै ॥

(२)

कै यह मेघ अकाश चढ़े महि आर्द्र करो यह गर्जतु है।
कै यह मीच के दूत भयानक पापिन को बहु तर्जतु है ॥
कै यह दामिन भामिन मीत जो मेघ को गर्जव वर्जतु है।
विरही डरि कै यह भाजि सिरीश अकाश भयातुर लर्जतु है ॥

(३)

"श्रीश" कहा घन पाप कियो उपकारहु पै इनको मुख कारो।
इन्दु में बिन्दु है श्यामल क्यों दिनही केहि देश दिनेश सिधारो ॥

चक्रवती कहं भाजि गये किन कोकिलहू व्रत मौन को धारो।
दादुर मोरहु शोर कियो कत पापी पपीहन ईश पुकारो॥

(४)

कत निर्मल श्रोत मलीन भयो केहि ओज ते अम्बुज शीस नवावें।
तलफै बिजुरी कत ज़ोर भरी अरु झींगुरहू झनकार सुनावें॥
भारत की यह देखि दशा मन शोक भरे सबरे दुख पावें।
सुर स्वामिहु सौहृद सोच पुरातन नयन हज़ारन आँसु चुवावें॥

(५)

उमड़े नभ मण्डल मण्डित मेघ अखंडित धार मही बरसावै।
ऋतु सावन की मन भावन पै विरही जन को यह दुख पहुंचावै॥
धरती चहुं ओर सिंगार किये नव दुलही सी सुखमा सरसावै।
"श्रीश," कहैं यहि भारत मंह ऋतु पावस भी अतिही मन भावै॥

श्रीकान्त पाठक

कवियों की युक्ति युक्ति

अधरोयमधीराक्ष्या बन्धुजीव प्रभाहरः।
अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम्॥

इस अधीराक्षी (चंचल नेत्रवाली) का अधर (ओष्ठ) वन्धुजीवा (गुल दुपहरिया के फूल) की प्रभा (चमक दमक) को हरे लेता है; बन्धुजीवा का दूसरा अर्थ हैं बन्धु का जीवन तो जब इसने अपने बन्धुही का जीवन हर लिया तब दूसरे जीव की प्रभा (द्युति) को हरा तो इसमें कौन सा अचरज है

अपर्णामौषधीमेकां पार्वतीं मृगयामहे।
शूली हालाहलं पीत्वा यया मृत्युञ्जयो भवत्॥

हम बिना पत्ते की पर्वत पर पैदा एक औषधी ढूंढते हैं जिस्के सेवन से शूल रोग से पीड़ित विष पान कर भी मृत्यु को जीतने वाला हो गया–अपर्णा पार्वती का एक दूसरा नाम है; शूली और मृत्युञ्जय, दोनो नाम महादेव के हैं; अर्थात् जिस पार्वती को पाय शूल धारण करने वाले शिव विष को भी पीकर मृत्युञ्जय हो गये–

पीतमम्ब सकृत्तेम्बु हन्ति दीर्घं भवज्वरम्।
अष्टावशेषतां नीतं भवभालानलार्चिषा॥

हे गंगे! एक बार तुम्हारा जल पिया हुआ दीर्घ काल का आवागमन रूप पुराना ज्वर हर जाता है–वैद्यों की चिकित्सा में अष्टावशेष जल दिया जाता है यह गंगा जल अष्टावशेष उस अग्नि में किया गया है जो शिवजीके भाल नेत्र में है–

"करतूती कहिदेत आप कहिये नहिं साईं"

आज बहुत दिनों के बाद मुझे कुछ हिन्दी कविता पढ़ने का शौक़ सवार हुआ तो गिरधर कवि की कुण्डलिया पढ़ने लगे–पढ़ते २ मुझे यही ऊपर लिखी हुई एक पंक्ति ऐसी भली जानपड़ी कि इसपर एक साथ ध्यान गड़ गया और उसके सम्बन्ध की इधर उधर की बहुत सी बातें याद आने लगीं–बहुत कुछ सोंचने पर हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि जैसे २ समय पलटता जाता है वैसेही वैसे कवियों को भी अपना ढंग बदल देना चाहिये–जिस समय गिरधर ने यह पंक्ति लिखा उस समय देश की दशा और कवि के चित्त की वृत्ति कैसी थी इसके विवरण करने का साहस तो हम नहीं करसक्ते परन्तु आज कल तो मेरी समझ में इस पंक्ति का अनुकरण करना "ख़ाली अज़ हिमाक़त" नहीं मालूम देता–कवि ने इस पद को नीचे लिखे हुये छन्द में कहा है–

"कह गिरधर कविराय बात चतुरन के ताईं
करतूती कहिदेत आप कहिये नहिं साईं,,

हमारी समझ में तो कवि गिरधर को इस छन्द का दूसरा पद यों लिखना था "अपनेमुंह कहिदेय और कहिबे की नाहीं" जिसमें क़ाफ़िया भी मिल जाय और बात भी तौलो तो बावन तोला पाव रत्ती

आजकल तनिक चारो ओर आंख खोल कर देखनेही से मालूम होजायगा कि मेरी लिखी हुई पंक्ति गिरधर कवि के पद से कहीं सच और ठीक है—भला आप स्वयमही देखलें कि इस पृथ्वी के जङ्गल में ऐसा कौनसा मार्ग है जिसपर मनुष्य अच्छी तरह और सही सलामती से बिना दूसरों को अपने आने का समाचार दिये हुये चलसक्ता है—यदि आपको दुनिया का कुछ भी तजुरबा है तो आप खुद हमारे कथन का अनुभव कर सक्ते हैं और यदि आप बे फंसे हुये चूहे के भांति अभी इस दुनिया के पिंजड़े में नहीं फंसे तो जिस समय कभी न कभी फस जायेंगे अनुभव करलेंगे—अजी बिना अपने मुंह मियां मिठ्ठू बने दुनिया का कोई काम चलही नहीं सक्ता और उससे बढ़ कर कोई भी मूर्ख नहीं जो इस बात की आशारखता हो कि और लोग उसके गुणों को अंगीकार कर उसका सन्मान करैं—कदाचित् आपको कुछ कविता का भी चसका होगा अभी अपने उभड़ते हुये जोशों में आप के ख्यालात न मालूम क्या २ क़िले बांधते होंगे—आप को यही ध्यान होगा कि आप अच्छे कवियों में गिने जाने लगेंगे और जब आप अपनी कही हुई कविता बहुत से लोगों की कविता से मिलाते हैं तो आशा भी दृढ़ होजाती है, आप यद्यपि लाज के मारे सिवाय दो एक मित्रों के और किसी को अपनी लिखी हुई कोई वस्तु दिखलाते भी नहीं तथापि यह भरोसा है कि किसी समय उत्कृष्ट कवियों में आप गिने जाने लगेंगे और लोग स्वयम् आप को जान जायेंगे और आपके लेखों की प्रशंसा करेंगे—अस्तु यह तो सब आपके हौसिले रहे परन्तु मित्र वर! आप यह नहीं जानते कि किसको इतनी ग़रज़ गई है जो आपको एक हीरे के अनुसार घूरे से ढूंढ निकाले—अजी क़दर जभी होगी जब आप भी नव-

विकसित लज्जावान् सुन्दरी का ढंग छोड़ बेहया और लज्जा रहित वेश्या के समान भड़कीला शृंगार कर लोगों को मोहित करने का यत्न करेंगे—अच्छे २ कवि कोनेही में पड़े रहजाते हैं कोई पूछता तक नहीं और ढोंग रच कर साफ़ चिकने कागज़ पर सुन्दर टाइटिल पेज़ के भड़कीले गहनों से ढकी हुई कुरूप से कुरूप क़ाफ़िया बन्दी के लोग आशिक़ होजाते हैं और उसको मनोहारणी कविता मानने लगते हैं—सुनिये ! जो आप कवि बनकर प्रशंसा चाहते हैं तो दो एक बात सलाह की मेरी भी मान लीजिये पहले तो बड़े २ अमीरों की जब तब प्रशंसा किया कीजिये दूसरे कभी इस बात का भूल कर भी दावा न कीजिये कि आप कुछ पढ़े लिखे हैं क्योंकि ऐसा कहने से आपकी प्रतिभा में फ़र्क़ आजायगा—सदा कालिदास और शेक्सपियर के समान आशुकवि होने का दावा बांधिये—तीसरे सदा इस बात को सिद्ध करने का यत्न कीजिये कि व्याकरण और पिंगल कोई वस्तु नहीं हैं; क्योंकि इनके बनाने वाले भी तो आखिर मनुष्यही न थे !—चौथे जब कोई आप काव्य रचैं तो उसको किसी न किसी राजा वा महाराजा को अवश्य समर्पण कीजिये और पुस्तक में अपनी फ़ोटो भी देदीजिये इसमें दो लाभ होंगे एक तो आपकी सूरत से बहुत लोग परिचित होजायेंगे और आपका नाम बहुत प्रसिद्ध हो जायगा दूसरे यदि लेख में कुछ न हुआ तो कदाचित् लोग आपकी सूरतही देख कुछ खुश हो जांय परन्तु हां ! यदि आप कुरूप हों तबतो मामलाही दीगर—फ़ोटो देने में ग्राहकों का भी इतना लाभ होजायगा की वे विचारे यही समझ अपने दिल को ढाढ़स दे लेंगे कि चलो यदि पुस्तक रद्दी है तो एक तसवीरही बच्चों के खेलने के लिये हाथ लगी—इतनी बातैं तो सीख लेना मानो कविता की पहिलीही सीढ़ी में पैर रखना है—

यदि आप में इतनी समझ और चतुराई नहीं है कि इन सब बातों को सीख सकैं तो आप के हक़ में यही भलाई है कि चुपके एक कोने में पड़े रहैं और अङ्गरेज़ी कवि ग्रे (Gray) की इन पंक्तियों को याद कर अपने मन को ढाढ़स दें—

"Full many a gem of purest ray serene
The dark unfathomed caves of ocean bear;
Full many a flower is born to blush unseen,
And waste its sweetness on the desert air".

फिर आप कदाचित यह सोचेंगे कि अच्छा यदि कवि नहीं होसके तो समालोचकही सही–परन्तु यहां भी यह बात याद रखिये कि बिना अपने मुंह बड़ाई किये काम नहीं चलेगा–सब के पहले समालोचक बनने के लिये आपको यह सिद्ध करना पड़ैगा कि आप में यह दो बड़े भारी गुण हैं एक खुशामद करना और दूसरे गाली देना–क्योंकि जब तक आप अपने सहायकों की खुशामद न करेंगे और उनके विप्रीत कहने वालों को गाली न देंगे आपको कोई समालोचक न समझेगा–

दूसरी बात जो आपको याद रखना चाहिये यह है कि समालोचक बनने के लिये आप को बृहस्पत के भी पितामह और त्रिकालज्ञ बनने का दावा करना पड़ेगा–तीसरी बात जो समालोचना करने में स्मर्ण करने के योग्य है और जिस्से आपके चित्त की यह अभिलाषा भी पूरी होजायगी कि आप जगत में प्रसिद्ध होजांय यह है कि जिसकी मनुष्य बड़ाई करैं आप उसकी अवश्य बुराई कीजिये इसमें आपकी तबियत की originality साबित होगी–और पाठकगण, क्योंकि उनमें से अधिकतर ऐसेही होते हैं जो सुनी सुनाई कहते हैं आपकी अवश्य प्रशंसा करेंगे समालोचना करने में इस बात का भी ध्यान रखिये कि खूब गाली गलौज करना समालोचना का आभूषण है–इसके बिना समालोचना वैसीही है जैसे बिना अलंकार की कविता–

इससे भी निराश हो आप कदाचित उपन्यास लिखने का हौसला करें–तो यहां भी यह याद रखिये कि बिना अपने मुंह मियां मिट्ठू बने काम नहीं चलेगा–जब तक आप अपने उपन्यासों के भांति २ के

लम्बे चौड़े विज्ञापन न देंगे कोई भी न पूछेगा कि आप किस कोने में पड़े हैं-इस लिये यदि आप उपन्यास लेखकों में अपना भी नाम दर्ज कराना चाहते हैं तो जो बातें कि मैं बतलाता हूं उस्का अवश्य प्रतिपालन कीजिये-एकतो सिवाय झूठ और असम्भव बातों के कभी कोई बात अपने उपन्यास में ऐसी न लिखिये कि जिससे यह जाना जाय कि लेखक कोई बात अपने तजुरबे की और सत्य कहरहा है-- ऐसा करने से आप की प्रतिज्ञा और Imaginative faculty की बड़ी प्रशंसा होगी और बात भी यही है कि उपन्यास में जितनाही झूठ बोलै उतनाहीं अधिक रोचक होता है-अजी झूठ बोलने में हानिही क्या ? उपन्यास का लिखना अदालत में गवाही देना थोड़ेही है कि जो कुछ मुंह से निकले सब सत्यही हो ? उपन्यास लेखकतो अपनी अदालत का खुद मालिक है-और मालिक को झूठ बोलने में कोई बुराई नहीं क्योंकि जितने कानून बनते हैं सब छोटही लोगों के लिये बनते हैं-कानून बनाने वाला अपने कानून से कभी बद्ध नहीं होता-उपन्यास लेखक भी यदि झूठ लिखें तो बुराई ही कौनसी क्योंकि वे तो प्रायः अपने उपन्यासों में किसी न किसी भांति यह कह कर कि झूठ बोलना बुरा है अपना क़ानून तो बनाही देते हैं-परन्तु इस कारण कि स्वयम अपने उपन्यास की कचहरी के अधिष्ठाता हैं अपने आइन और (Act) से बद्ध नहीं हो सकते-दूसरी बात जो आप को सदा स्मर्ण रखना चाहिये यह है कि भूल कर भी आप इस बात का दावा न बांधे कि आपने शुद्धभाषा लिखी है-क्योंकि कहीं पाठकों को यह मालूम हो गया कि किसी उपन्यास लेखक ने कुछ शुद्ध हिन्दी लिखने का हौसिला किया है तो दस पांच कांपी भी बिकना दुर्लभ हो जायगा और समाचार पत्रों के सम्पादक जुदा ग़ोट उड़ावेंगे-उपन्यास लिखने में एक और बात याद रखना अत्यावश्यक है-वह यह कि किसी दो अध्याय में कुछ भी लगाव न हो-एक अध्याय लिख कर उसकी शृंखला दूसरे अध्याय में कभी न रक्खे किन्तु यह लिखकर चट सीन बदल दे कि "अब हम अपने पाठकों को यहां से लेचल कर एक ऐसा सरसब्ज़ मैदान

दिखाते हैं" इत्यादि–इस रीति का अनुकरण करने से नावल लिखने में लियाकत और माद्दा मालूम होगा–इस में एक लाभ यह है कि पाठक बिचारा किस्सा भूल जायगा और उसकी असंगत बातों पर भी ध्यान न दे सकेगा–इन बातों के अतिरिक्त जो बातें कि कवि के लिये लाभदायक बतलाई गई हैं–उनका उपन्यास लेखकों को भी अनुकरण करना चाहिये जैसे फ़ोटो का किताब में देना इत्यादि–

अब आप कदाचित यह सोचे कि कुछ न सही तो चलो किसी समाचार पत्र के सम्पादक ही बन बैठें क्योंकि इससे आसान काम दूसरा काहे को मिलैगा और इसमें कुछ अधिक पाण्डित्य की भी आवश्यकता नहीं हैं–परन्तु यहां भी आप यही पाइयेगा कि मेरी वही कहावत ठीक फबती है "अपने मुंह कहि देत और कहिबे की नाहीं"

जब आप कवि, समालोचक, उपन्यास लेखक कुछ भी नहीं हो सक्ते तो आप कैसे आशाकर सक्ते हैं कि आप सम्पादक हो जांय क्योंकि सम्पादक में इन तीनोहीं के गुण पराकाष्टा को पहुंचने चाहिये अर्थात सम्पादक को कवि के समान खुसामदी, समालोचक के समान गाली गलौज करने और लड़ने वाला, और उपन्यास लेखक के समान झूंठ औ व्यर्थ बातें बनाने वाला होना चाहिये–इन सब के अतिरिक्त सम्पादक में एक गुण यह और होना चाहिये कि वह हिम्मती और चालाक हो–मसल मसहूर है कि "नाई छत्तीस कुएं का पानी पीता है" परन्तु सम्पादक बनने के लिये तो सैकणो कुओं का पानी पीना पड़ता है–बिना सैकणों जगह घूमे और सैकणो कुओं का पानी पिए हुए सम्पादक बेचारा एक ग्राहक भी नहीं करसक्ता–

अब तो मैं समझता हूं कि आप के ध्यान में यह बात अच्छी तरह आगई होगी कि गिरधर कवि का यह पद "करतूती कहिदेत आप कहिये नहिं साईं" बिलकुल पोच है–आप दुनिया में चाहे जो काम करना चाहें यह सदा पाइयेगा कि बिना अपनी श्लाघा किये काम नहीं चलेगा–अस्तु इतनी नशीहत आपके फायदे के लिये कर

अब मैं आप से बिदा होता हूं और अन्त में बतौर सबक़ के याद करने के लिये दो सतरें भी लिखे देता हूं–

"कहैं चतुर कविराय, बात मूरख के ताहीं।
अपने मुंह कहिदेत, और कहिबे की नाहीं" A. S.

॥ पुस्तक प्राप्ति ॥

प्रेम पथ।

बाबू शारदा प्रसाद बानव रचित–उपन्यास के आकार में यह पुस्तक निसन्देह प्रेम का सुगम पैंड़ा कहा जा सक्ता है–गृहस्थी में रह पति पत्नी में प्रेम भाव किस प्रकार होना चाहिये इसका एक उदाहरण इसमे अच्छा दिखलाया है–बीच २ ग्राम्य जीवन नायक नायिका में अकृत्रिम स्वाभाविक सरल प्रेम एक ऋतु से दूसरी ऋतु के बदलने पर प्राकृतिक परिवर्तन आदि बातें बिल्कुल निराले ढंग पर दर्साई गई हैं–मौके २ पर गृहस्थाश्रमी को घर गृहस्थी के उपदेश मानो सोने में सुगन्धि से झलक रहे हैं–अभी इसका पहिला भाग छपा है ग्रन्थकार को यदि सहायता मिलती रहै और इनका उत्साह बढ़ाया जाय तो हिन्दी के यह प्रसिद्ध सुलेखक हों तब इसका दूसरा भाग जो बनाया जाय और अधिक मनो रंजक हो मूल्य ।=)

पुस्तक मिलने का पता–मेनेजर क्वीन प्रेस या पुस्तक रचयिता

शारदा प्रसाद बानव–इलाहाहाबाद।

ब्रह्मचर्य।

स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती रचित–निस्सन्देह हिन्दुस्तान का वर्तमान गिरीदशा में आजाना ब्रह्मचर्य का उठजाना और बाल्य विवाह की कुप्रथा का प्रचलित होना अवश्य माना जायगा–पर नक्कार खाने

में तूती की आवाज़ कौन सुनता है—इसतरह की हज़ारों पुस्तकें बनती रहें यह वह क़ौम नहीं है कि ऐसे २ लेख का इनपर कुछ असर हो; बाल्यबिवाह यहां से कभी उठने वाला नहीं है--यह असाध्य रोग वैसी बीमारी नहीं है जिसे हम अमृत की घूंटी पिलाय चंगा कर सकैं—अस्तु ग्रन्थकर्ता ने "ब्रह्मचर्य के लाभ दिखलाने में कहीं से त्रुटि नहीं की अनेक उक्ति युक्ति के अतिरिक्त श्रुति स्मृति धर्म शास्त्र पुराण आदि कोई नहीं बचे जिस्का प्रमाण इस्में नहीं दिया गया—इस्में सन्देह नहीं कि ब्रह्मचर्य समाज के सुधार की पहिली सीढ़ी है हम लोगों के यज्ञोपवीत संस्कार में इस ब्रह्मचर्य की फज़ीहत देख हमें और भी दुःख होता है-ऐसी भारी बात जिस्पर आदमी की तमाम ज़िन्दगी का बनना बिगड़ना मुनहसर है अब इन दिनों एक फांस के समान दिखाई जाती है-२ घंटे में ब्रह्मचर्य और समावर्तन सब पूरा हो गुरूजी या पुरोहित जी को दक्षिणा घर की पुरानी बुढियाओं की रीत रसम में अलबत्ता त्रुटि नहीं होने पाती—अस्ल में इस जनेऊ की रसम क्या है और क्यों की जाती है इस्पर कभी किसी का ध्यान नहीं जाता-सच है "नहिं सुखंदुःखैर्विना लभ्यते" कहना ब्रह्मचार्य के सम्बन्ध में सुघटित सा बोध होता है—ब्रह्मचार्य पालन में हम अपनी सब इन्द्रियों को दबाए रक्खैं तो ज़िन्दगी भर के लिये मानो उन २ इन्द्रियों का हम पूरा सुख सम्पादन कर चुके—दूसरे जब हमे दमन का अभ्यास पड़ा रहेगा तो भोग लिप्सा में पड़जाने की कम उम्मेद रहेगी ऋषियों में जो इतना दमन था सो इसी ब्रह्मचर्य के पालन की बदौलत उन्मे तपोबल भी इसी ब्रह्मचर्य ही का था जिस तपोबल से उन्हो ने न जानिये क्या २ कर डाला—हरिद्वार के गुरूकुल में इस ब्रह्मचार्य की प्रथा का प्रचार भारत के नवाभ्युत्थान महा मन्दिर की मानो नए सिरे से नेव का डालना है हमारे धर्म शील उदार प्रकृति वाले ईट पत्थर में प्रतिबर्ष लाखों फूक बड़े २ मन्दिर तैयार किया करते हैं इस गुरू कुल महा मन्दिर में जो अपनी उदारता को काम में लाते तो देश का भाग्यहीन जगनठता—अस्तु ब्रह्मचर्य बिषयक यह पुस्तक बड़ी उत्तम और संग्रह के योग्य है ॥

हिन्दीप्रदीप

मासिक पत्र

विद्या, नाटक, इतिहास, साहित्य, दर्शन, राजसम्बन्धी इत्यादि
के विषय में हर महीने की पहिली को छपता है ॥

शुभ सरस देश सनेह पूरित प्रगट ह्वै आनन्द भरै
बचि दुसह दुरजन बायुसों मणिदीप सम थिर नहि टरै ॥
सूझै विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामें जरै ।
हिन्दी प्रदीप प्रकाशि मूरखतादि भारत तम हरै ॥

जि० २५ सं० ९ १० । ११ । १२ } प्रयाग { सितम्बर, अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर सन् १९०३ ई०

पं० बालकृष्ण भट्ट सम्पादक और प्रकाशक की आज्ञानुसार
पं० रघुनाथ सहाय पाठक के प्रबन्ध से
यूनियन प्रेस इलाहाबाद में मुद्रित हुआ

सभायें पुस्तकालय और विद्यार्थियों तथा सर्वसाधारण से अग्रिम १॥=)
समर्थों से मूल्य अग्रिम ३।=) —०*०— पीछे देने से ४।=)

पिछले अङ्कों की पूरी जिल्द फी जिल्द मै पोस्टेज १=)

—:००:—



हिन्दीप्रदीप

जि० २५ सं० ६-१०-११-१२ } प्रयाग { सेपटेम्वर अक्टूबर नवम्बर दिसंवर सन् १६०३ ई०

लौ लगी रहे ।

लौ लगी रहे तो कठिन से कठिन और दुष्कर से दुष्कर काम सहज से सहज और सुकर से सुकर हैं दुर्लभ सुलभ असाध्य सुसाध्य हैं यहां तक की राई का पर्वत और पर्वत का राई हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है पर जो लौ लगी रहे किन्तु लौ का लगनाही तो कठिन है– सच्ची लौ लगै तो संसार के क्षुद्र पदार्थों की प्राप्ति तो कुछ हई नहीं बरन इन्द्रियातीत जो देव दूत और फरिश्तों को नहीं मिला वह अनायास मिल सक्ता है–सच्ची लौ लगी तो जिसमें लौ लग जाती है वह जल, थल, जड़, चेतन, आकाश पाताल सब ठौर सबों में

वही २ सूझता है प्रहलाद और नृसिंह का इतिहास इस का पूरा उदाहरण है-जिस को जिस में लौ लगती है उस को सिवा उस पदार्थ के और सब फीका मालूम होता है उसे रस केवल उसी में मिलता है-विद्यार्थी को विद्या में लौ लगी तो एक २ क्षण भी व्यर्थ बीतते उसे बड़ा अफसोस गुज़रता है इसी से कहा है "किंक्षणस्यकुतो विद्या" कृपण को धन जोड़ने में लौ लगी तो एक फूटी झंझी भी खरच करते या किसी को देते बहुत अखरता है-

"क्षणशः कणशश्चैव विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
किंक्षणस्य कुतो विद्या किंकणस्य कुतो धनम्" ॥

प्रेमी को अपने प्रेम पात्र में लौ लगी तो वह कामी आशिकतन सब २ फज़ीहत और दुर्गति सहता यहां तक कि सौदाई दीवाना बन जाता है बेशरमी का जामा पहिने हुये लौ लगने के नशे में चूरचूर कभी को लाखटके के जीवन तक से हाथ धो बैठता है-नीचे के श्लोकों में लौ लगने का बहुत अच्छा चित्र खींचा गया है-

"अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालि मृडालैरिति रुदति दिवानिशं बाला" ॥

"तव विरहविधुरवाला सद्यः प्राणान् विमुक्तवती ।
दुर्लभमीदृशमङ्गं मत्वा न ते तामजहुः" ॥

सच है वियोग लगन की ऐसीही कसौटी है-कोई किसी प्रेम पात्री का संदेसा किसी से कहता है-तुम्हारे वियोग से विधुर फिर मिलने की आशा न समझ जल्द उस ने प्राण छोड़ दिये-किन्तु यह विचार कि ऐसे कोमल अङ्ग हम को अपने रहने के लिये कहां मिलैंगे इस लिये प्राणों ने उसे न छोड़ा-एक दूसरा उदाहरण सच्ची लगन का यह भी है-"डर न मरन विधि विनय यह भूत मिलैं निज बास-प्रिय हित बापी मुकुर मग बीजन अँगन अकास"-जो कहीं परस्पर दोनों की लगन लग गई तब तो एक मन दो तन उस का

कहनाही क्या जैसा किसी शायर ने कहा है "इस लिये तस्वीर जाना मैंने खिचवाई नहीं–एक से जब दो हुये तो लुत्फ एकताई नहीं" इत्यादि शृङ्गार रस पूर्ण इस के अनेक उदाहरण हैं सरस हृदय के लिये इतना दिग् दर्शन मात्र बहुत है–

भक्त को अपने उपास्य देव में लौ लगी तो वह अपने को सब भांत अशरण माने हुये केवल उसी के स्मरण, कीर्तन, सेवन, पादवन्दन में निरन्तर अनुरक्त होने के और कुछ जानताही–नहीं वह सब ठौर वही अपने उपास्य को व्याप्त मानता है ऐसे तन्मय लौलीन उदार चेता शुद्ध चित्त सीधे जी को "तद्विष्णोः परमं पदम्" की प्राप्ति क्या दुष्कर है–सर्व व्यापी परमात्मा जो घट २ की जानता है उसे सीधा निष्कपट भोला भाला समझ क्यों न अपनिआवेगा–महात्मा ईसा का भी कथन है "स्वर्ग का राज्य ऐसों का है जो इन बालकों के समान भोले और सीधे हैं" प्राचीन समय में इस तरह के सरल चित्त प्रह्लाद, अम्बरीष, शबरी, सुदामा आदि कितने अनन्य भक्त हो गये हैं जो अपने प्रभु और सेव्य की सेवा में सदा निरत और लौलीन रहे–इस हाल के समय में मीरा, नरसी, कबीर, दादू, नानक, सूर, तुलसी, प्रभृति और अनेक महात्मा ऐसे हो गये जिन के हृदय का कपाट खुला हुआ था और जिन को परमेश्वर का साक्षात्कार हो गया था; जो भक्ति रसामृत के अगाध सिन्धु में डूबे हुये निर्वाण पद मुक्ति को भी लात मारते थे–इन सबों की ऐसी दृढ़ लौ लग गई थी कि उन्हें सारा संसार अपने सेव्य प्रभु मय था और सिवाय उस सर्वव्यापी के और कुछ थाही नहीं; जिन के समभाव में सब एक थे छोटा बड़ा ऊंच नीच कोई न था; जिन के कहे वाक्य या पदों में इतना असर है कि उन अक्षरों के कान में पड़तेही जी पिघल उठता है तो कैसे कहैं कि ये महात्मा साधारण व्यक्ति के थे–उपास्य और उपासक में क्या सम्बन्ध है और उस सम्बन्ध को जोड़ देने वाली कौन सी ऐसी डोर है जो दोनों को ऐसी दृढ़ता के साथ मिलाये हुये है? वह डोर यही लौ का लगजाना है–उसी को

भक्ति, अनुराग, प्रेम, लगन, सख्य, सौहार्द, आत्मनिवेदन, आदि जुदे २ नामों से कहते हैं-फिर यह डोर वैसी नहीं है जिस में गांठ पड़ सके या उस के टूट जाने की संभावना हो-इस का कुछ पैड़ाही न्यारा है- प्रेम रज्जु के बन्धन का ढंगही निराला है-

"बन्धनानि किल सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर्निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः" ॥

बन्धन बहुत तरह के हैं पर प्रेम की डोर से बँध जाना कुछ औरही है; भँवरा काठ के छेदने में निपुण है सही पर पंकज के प्रेम में मग्न हो उस के मुकुलित हो जाने पर रात भर उसी में बंधा पड़ा रहता है और कुछ नहीं कर सकता-यदि दृढ़ और सच्ची लौ लगी है तो इस डोर में गांठ भी नहीं पड़ती क्योंकि गांठ तो तभी पड़ सक्ती है जब लौ लगाने वाले को कहीं दूसरा सहारा हो; जब उसने अपने को अनन्य शरण और अगतिक मान लिया तब उस के लिये सिवाय उपास्य देव के और कौन अगतिक का गति और शरण देने वाला हो सकता है-समस्त दृश्य जगत् चाहो अभी उच्छिन्न हो जाय या इस मर्त्यलोक के कीटानुकीट स्वर्गवासी अमर गण देवताओं के ऊपर का दरजा प्राप्त करलें उपासक के सरल कोमल मुग्ध मन में इस का कुछ भी असर नहीं होता-इस वाह्य जगत् के बनने या बिगड़ने से उसे कोई सरोकार नहीं यदि उस के उपास्य प्रभु का उस से कोई लगाव नहीं-बड़े २ चक्रवर्ती राज्यों का अधःपात तथा तुच्छातितुच्छ जन समूहों का संसारिक विभव के ऊंचे शिखर पर चढ़ना बड़े २ राजनीतिज्ञ Politician और Statesmen जिस पर न जानिये क्या २ तूमार बांध खयाली पुलाव पकाया करते हैं; वे २ घटनायें जिन की बुनियाद पर मुल्क या कौम का बनना बिगड़ना आ टिकता है उन से अपने प्रभु की सेवा टहल में लौलीन उपासक को कोई प्रयोजन नहीं-जिसका नम्बर हमारे देश में इतना अधिक है और मज़हबी

जोश इतना बढ़ा है कि इस तालीम के ज़माने में कोशिश करने पर भी मुल्की जोश की ओर हमारी झुकावट होतीही नहीं भक्ति मार्ग जो अमृत तुल्य है इस समय हमारे लिये ज़हर का प्याला हो रहा है—स्वर्ग की सीढ़ी हाथ लगती है एकही उछाल में इन्द्र के आधे आसन पर जा विराजोगे ; इस अदृष्टबाद के बहाने इन से जो चाहो सो करा लो जो चाहो सो लेलो कभी इनकार न करैंगे कोई मुल्की मामिले जिस में मज़हब या परोक्ष का दखल न हो कभी उस में ये प्रवृत्त न होंगे—अरब के मुसल्मान भी यहां आय इनका साथ पाय सब ज़र्रारी तर्रारी भूल गये तस्वी हाथ में लेली—शासन कर्ता हमारी इस तरह की झुकावट का पूरा फाइदा उठा रहे हैं नहीं तो कभी मुमकिन था कि मुल्क का मुल्क हज़ारों बर्ष से गुलामी की हालत में पड़ा रहता—अस्तु लौ लगी रहै उपकारी को परोपकार की लौ लगी है; खल को दूसरों की बुराई ढूढने और पीड़ा पहुंचाने की लौ लगी है ; सरकार को अपने राज की सीमा बढ़ाने की लौ लगी है; रूस को हिन्दुस्तान की लौ लगी है—हमारी लौ लगी है कि किसी उदार चित्त बीर पुरुष के मन में आ जाती हम अपना निज का प्रेस कर लेते पत्र चिरस्थाई हो जाता; गुरू जी की लौ लगी है जहां तक चेला मुड़ैं मूड़ते रहैं और पन्थ बढ़ाते जांय—पादरी साहबों की लौ लगी है कि छल बल कल जिस उपाय से बनै हिन्दुस्तान के लोगों को ईसाई करते रहैं जिस में विलायत के बड़े२ चेरिटी फंड को लूटने का सुबीता रहे; हमारी कारगुज़ारी उन २ फंड के प्रधान लोगों के निगाह में जचती रहें—ब्रह्मास्मि कहने वालों की लौ लगी है कि हम निर्वाण पद पा जांय और जनन मरण के क्लेश से मुक्त हों इस लिये कि अब तो हम ब्रह्म हो गये और वह अजन्मा है तब जनन मरण फिर कैसा—ब्रह्मास्मि वाले जिनका मनो नाश हवस का बुझा देना मुख्य उद्देश्य है वे भी इस लौ लगने की डोर से कसे हुये हैं तब हम लोग जिन्हें हवस एक दम के लिये नहीं छोड़ती

और आशापाशशतैर्बद्ध काम क्रोध परायण हो रहे हैं उन की क्या-अंतर केवल इतनाही है कि जो भले हैं उन्हें भलाई की ओर लौ लगती है बुरों को बुराई की ओर आदमी का चोला पाय जिसे किसी में लौ न लगी उस का जन्मही व्यर्थ है-

एक व्यर्थ का ऊहा पोह।

कहावत है "गुण न हिराने गुण गाहक हिराने हैं" पर हमें इस के विरुद्ध इस समय जंचता है-इस तालीम और सभ्यता के ज़माने में गुण गाहक की कमती नहीं देख पड़ती वरन गुणियोंही की कमी है; गुणी से हमारा प्रयोजन बड़े २ इम्तिहान पास किये सकल कला कोविद [illegible] ोल चाल में चरपर चञ्चल घोड़े के समान अस्थिर क्षुद्र प्रकृति वालों से नहीं है किन्तु [illegible]ित विद्या को काम में लाने वाले गुरुता की मूर्ति स्थिर चित्त सहनशील शान्त दान्त से है-हम देखते हैं तो इन तालीम याफ्तों में इस तरह के शिष्ट महत्तों की बड़ी त्रुटि है; कुछ तो इस का कारण यह भी मालूम होता है कि अंगरेज़ी की शिक्षाही इस क्रम की है कि अंगरेज़ी पढ़ा तेज़ मिज़ाजी में औरों की अपेक्षा आगे बढ़ा रहता है-अस्तु जो हो इस समय लेकचरबाज़ी इतनी बढ़ी हुई है कि लेक्चर सुनते २ कान भर गया जी ऊब उठा है तले तक यहा के देखते हैं तो लेक्चर देने वालों में कहे हुये लेक्चर के अनुसार कर के देखा देने में कहीं दस में एक भी न पाओगे-अंगरेज़ी में एक कहावत "प्रोवर्ब" है First deserve then desire पहले योग्यता प्राप्त कर तब उस योग्यता के अनुसार फल की आशा उपयुक्त है यहां देखते हैं तो ऐसी योग्यता खाक भी नहीं पर सर्व मान्य होने की अभिलाषा अलबत्ता रहती है-साधारण लोगों का ठीका तो हम नहीं लेते किन्तु Culturedmind सुपठितों को अवश्य ऐसों की तालाश है जिन को वे अपना शिक्षा गुरू मान संसार के कामों में रहनुमाई

पावें–ऐसे महा पुरुष जहां कहीं होंगे चाहो वे अपने को कितनाहीं छिपावें लोग उन को ढूंढ लेंगे–हमारे ब्राह्मणों के समूह में इसकी बड़ी त्रुटि है–ब्राह्मणों ने ब्राह्मणता को केवल पुजाने और आराम से ज़िन्दगी काटने का वसीला मान रक्खा है–अब इस समय सैकड़ों में कहीं एक दो भी ऐसे सात्विक ब्राह्मण नहीं देखे जाते जो आचरण के परम पवित्र, दम्भ से रहित, विद्या और तपस्या से सांगोपांग पूर्ण, सतोगुणी, सन्तोषी, सबों को सन्मार्ग में प्रवृत्त होने के लिये अपना स्वार्थ कुछ न रख लोगों को हिन्दू धर्म का मर्म और सच्ची राह बतलाने वाले हों–खेद है कि ब्राह्मणता जो निरा पुजवाने का ढंग लोगों के खयाल में इस समय धरा हुआ है उस का निवाहना बड़ा कठिन बल्कि लोहे के चने हैं–धर्म शास्त्रों में देखो तो बहुत थोड़े अपराध में "ब्रह्मणादेव-हीयते" ब्राह्मणता से नीचे गिर जाता है ऐसा अनेक ठौर पाया जाता है प्रायश्चित भी ब्राह्मणों के लिये औरों की अपेक्षा बड़े कड़े और अधिक हैं जिससे प्रगट है कि ऋषियों को ब्रह्मणत्व कायम रखने का बड़ा खयाल था–इस गिरे ज़माने में भी ऐसे ब्राह्मण जहां कहीं होंगे सर्व मान्य हो बड़ी कदर पाते होंगे–हमें निश्चय है जिस दिन ये ब्राह्मण अपनी निद्रा से जाग पूर्वज माननीय ऋषियों का बहुमूल्य धन ब्राह्मणत्व को निवाहने के लिये कमर बांध मुस्तैद हो जांयगे उसी दिन भारत का पुनः अभ्युत्थान होते तनिक देर न लगेगी पर ऐसा होना बड़ा कठिन है अभी तो ये कुछ दिन नीचेही गिरते जांयगे–देश भर की फिटकार सहते और जिल्लत उठाते निहायत कम कदर कर दिये जांयगे तब कदाचित चेतैं तो चेतैं–जिन पर हिन्दू धर्म की जोनेव वेही जब बिगड़े तब हम अपने वैदिक धर्म की कै दिन कुशल मना सकते हैं–हिन्दू धर्म और ब्राह्मण में ऐसा घनिष्ट सम्बन्ध है कि न विना ब्राह्मण के हिन्दू धर्म रह सकता है न विना हिन्दू धर्म के ब्राह्मण तो हिन्दू धर्म की उन्नति में ब्राह्मणों की उन्नति मूल कारण है–जैसा इस समय ब्राह्मण लोभाभिभूत हो अपने को कदर्य कर डाला ऐसाही पहले

भी होते तो कभी सम्भव न था कि बौद्ध जैन और मुसल्मानों की इतनी चोट सहकर भी यह बैदिक धर्म अब तक कायम रहता-सो निश्चय हुआ कि अब ब्राह्मणों का सुधार बड़ी ज़रूरी बात है सो तभी होगा जब इन में Self sacrifice अपना नुक़सान सहने का माद्दा आवे-सो काहे को कभी होना है जो ये पूर्बज ऋषियों की सी ब्राह्मणता बनाये रहते तो कभी मुमकिन था कि अपनेही बीच से जो अनेक सनातन धर्म के विरोधी उठ खड़े हुये हैं इन को दबाने की हिम्मत करते अस्तु दैव की कुछ ऐसीही इच्छा है-

---

पारसी थियेटर।

हिन्दू जाति तथा हिन्दुस्तान को जल्द गिरा देना का सुगम से सुगम लटका यह पारसी थियेटर है जो दर्शकों को आशिकी माशूकी का लुत्फ़ हासिल करने का बड़ा उम्दा ज़रिया है-क्या मज़ाल जो तमाशबीनों को कहीं से किसी बात में पुरानी हिन्दुआनी की झलक मन में आने पावे-इतना पीर, पैगम्बर, परी, हूर का ज़हूर कहीं न पाओगे; तीसरे शाइस्तगी की नाक उर्दू का जौहर मुल्क में दस्तयाब होता है-सच कहो तो यही३ बड़े फाइदे नाटकों के अभिनय के हैं पहला धर्म सम्बन्धी समाज सम्बन्धी या राजकीय सम्बधी उत्तम उपदेशों का मिलना; दूसरा देश की पुरानी रीति नीति को किसी पुराने इतिहास या घटनाओं का अभिनय कर दरसाना अथवा प्रचलित कुरीति की बुराइयों को दिखाना; तीसरा भाषा का प्रचार-थोड़े से भव्य लोग यही सब समझ जब यहां कोई जानता भी न था कि नाटक क्या वस्तु है इस के अभिनय में प्रवृत्त हुये और हिन्दी के कई एक नाटकों का उन्होंने अभिनय कर लोगों को इस का शौक दिलाया-पीछे बम्बई के पारसियों का एक दल बम्बई से चला और वे बड़े२ शहरों में इस रंग का अभिनय करने लगे अस्तु तहां तक बुरा न था क्योंकि उन के अभिनय में भी किसी २ तमाशे में पुरानी रीति नीति और हिन्दी का

विरोध न था पीछे दिल्ली लखनऊ आगरा आदि कई शहरों के बिगड़े नौजवनों की गरोह जमा हो अभिनय को जो सभ्यता का प्रधान अंग था और भलाई के प्रचार तथा सदुपदेश प्राप्त करने का उत्तम द्वार था इस दुर्गति को पहुंचाय हमारी पुरानी हिन्दुआनी का सत्यानाश कर डाला और नई उभाड़ के तरुण जनों को उन की नई उमंग के लिये बड़ा सहारा मिल गया-भविष्य में इसका परिणाम यही होने वाला है कि हमारी नई सृष्टि में आर्यता और हिन्दूपन का चिन्ह भी न बच रहैगा बोल चाल रहन सहन में अर्द्ध यवन तो हुई हैं अब पूरे आशिकतन यवन बन बैठैंगे-

---

श्वेत और कृष्ण का संगम।

"स्वदेश जातस्य नरस्य नूनं गुणाधिकस्यापि भवेदवज्ञा"।

इस पद दलित भारत की चोटी श्वेतकाय प्रभुओं के हांथ में आये बहुत वर्ष बीत गये; भारत वासियों की भलाई के लिये इन प्रभुओं ने सैकड़ों उपाय किये सहस्त्रों कृष्णकाय पश्चिमी शिक्षा की दीक्षा पाय पशु संज्ञा से निकल मनुष्य कहलाने योग्य बन गये-श्वेतकाय प्रभुवरों के सुशासन में भारतवासी मुसलमानी बादशाहों के जुल्मों को भूल गये-इन श्वेताङ्गों ने यहां के लोगों को सुख पहुंचाने की जो २ चेष्टायें कीं और कर रहे हैं उन को विस्तार के साथ लिखना केवल पिष्टपेषण करना है-रेल, तार, टेलीफोन इत्यादि अनेकानेक इन प्रभुवरों के प्रसाद हैं-जिन के शासन काल में एक धन तो घटता गया बाकी जितने सभ्यता के अङ्ग हैं सब की दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की होती जाती है-यह सब जानते हैं एक हांथ से ताली नहीं बजती जिस तरह राजा अपनी प्रजा पर स्नेह करता है उसी प्रकार प्रजा भी अपने राजा पर भक्ति का भाव बढ़ाती जाती है-ज्यों २ प्रभुवरों की ममता प्रजा के साथ बढ़ती गई त्यों २ प्रजा ने भी अपना धर्म राजा की भक्ति का

पालन किया किन्तु अघटित घटना पटीयसी परमेश्वर की लीला का अखण्ड ताण्डव ऐसा दृष्टि गोचर हुआ कि थोड़े से श्वेतकाय कर्मचारियों की असावधानता से थोड़े से असहिष्णु कृष्णकाय सैनिकों में असन्तोष फैलाने के कारण श्वेतकाय पुरुषों के पैर डगमगाने लगे-उस समय इस घोर राष्ट्र विप्लव के अवसर पर यहां की न्याय का सन्मान करने वाली प्रजा ने देश के थोड़े से अविवेकी मनुष्यों की अवज्ञा कर उन्हीं श्वेतकाय कर्मचारियों का साथ दिया जिससे सदा के लिये श्वेतांगों का शासन यहां दृढ़ हो गया और अब भी जब कभी इन प्रभुवरों का कोई उत्सव आ पड़ता है तो भारत के धनहीन कृष्णकाय प्रभुओं को प्रसन्न रखने के लिये अपना पेट काट कर उस उत्सव को मनाते हैं-दोनों ओर से परस्पर ऐसे उचित वर्ताव के होते हुये भी श्वेत और कृष्ण दोनों दलों के थोड़े से दूरदर्शी महानुभावों की धारणा हो रही है कि इन दोनों का मन अभी एक नहीं है-इतने सहवास से इतने निकट सम्बन्ध तथा सब भांत स्वारस्य से तो गौर को कृष्ण से दूध में पानी सा मिलजाना था पर अचरज होता है कि अबतक ये दोनों जातिवाले सब तरह सांप और नेउले की भांत अलग हैं-उनकी भाषा पढ़ने को ; उनकी भांत होटलों में खान पान को; राम कृष्ण तथा हिन्दू देवी देवताओं की निन्दा को; कोट पैंट बूट हैट लगा कर मुह में चुर्ट दबाय बेंत खटखटाते हुये चलने को; उनके भांत बंगलों में जा रहने को; पिता पितामह आदि को मूर्ख कह उनके बनाये हुये रिवाजों से घिन करने वालों की संख्या बढ़ने को; अथवा श्वेतांग हिन्दू धर्मानुसार मृतक के दाह करने को तथा हिन्दू धर्म की भट्टी से भट्टी बातों के पोषण को; आजन्म मांसाहारी होने पर भी अब विजिटेरियन घास खोर बनजाने को; हिन्दू नाम से कालेज खोलने को; राम कृष्ण का नाम लेले ताथेई ताथेई नाच को हम ऐक्य कभी न कहैं गे और न कोई विचारवान्ही इसे ऐक्य कहेगा-हम तब ऐक्य समझते जब इन दोनों जातियों के चित्त में एक दूसरे के लिये

सहज स्नेह हो एक जाति दूसरी जाति के दुख में दुखी सुख में सुखी हो; केवल बाहरी एटिकेट रूप महा आडम्बर का विनाश हो जाता—हां इतना तो हम भी देखते हैं कि बाहरी व्यौहारों में ये दोनों एक हैं और आपस में बड़ा प्रेम रखते हैं किन्तु चित्त या आन्तरिक इन दोनों का भिन्न २ है—बाहरी बर्ताव में लोगों ने यहांतक देखा है कि राज घराने में मृत्यु होने पर श्वेतकाय जाति के लोग बाजू पर चाहो काला बिल्ला न बांधें और सफेद कागज या सादे लिफाफे पर भलेही खत किताबत करें पर कृष्णकाय अवश्यही दूसरी जाति वालों को प्रसन्न रखने को काला बिल्ला बांधेंगे और पत्रव्यवहार में ब्लैक बार्डर के नोटपेपर और कबर काम में लावेंगे—ऐसाही दूसरी ओर प्रभुओं में भी बाहरी सहज स्नेह अधिक पाया जाता है—हाल की बात है कि इस माघ मेले के आरंभ में त्रिवेणी तट पर गंगा जी का दूध और फूल से पूजन और वहां के पण्डों को दक्षिणा देते हुए गौराँग प्रभुवर देखे गये—सारांश यह कि प्रत्यक्ष मे न इन्हीं की ओर से कुछ त्रुटि है और न उनकाही कोई अपराध है तब क्या कारण है कि सितासित का पूर्व पश्चिम का गंगा यमुना के संगम की भांत संगम अभी लों रुका पड़ा है—

राजनीति विशारदों के मतानुसार इस अनैक्य के कई कारण जान पड़ते हैं—हमारी मन्दमति में तो ऐसा आता है कि ये कृष्ण जब अपना जात्यभिमान छोड़ सब भांत उन के अंग हो जायगे तब यह अनैक्य दूर होगा—किसी २ का यह भी मत है कि कृष्णकाय जिस प्रकार उन्हें विदेशी समझते हैं वैसाही श्वेतकाय इन्हें पराजित मूर्ख अन्धेरे में पड़ा हुआ मानते हैं—कोई २ श्वेतकाय प्रभुओं के बार २ जाति पक्षपात से यह गांठ और भी दृढ़ होती गई—भूत पूर्व बड़े लाट लार्ड बेन्टिंक इन दोनों जातियों में भेद बुद्धि का कारण यों लिखते हैं "मैं जितने दिनों तक यहां रहा उतने दिनों के अनुभव से मुझे यह जान पड़ा कि श्वेतकाय कृष्णकाय के आचार व्यवहार रहन सहन को

थोड़ा बल्कि बिल्कुल नहीं जानते; हम लोग उन की भाषा को अच्छी तरह नहीं जानते वे लोग हमारी भाषा कदाचित् अधिक जानते हैं—हम लोग उन की मोटी २ बातों को केवल जानते हैं उन की सूक्ष्म और घरैलू बातों से बिलकुल अजान हैं; उन के सोचने का ढंग उन की घरैलू आदतें और उत्सव या तिहवार जिनसे उन की स्वाभाविक बुद्धि का परिचय मिल सकता है हम लोग कुछ भी नहीं जानते; हम न उन के साथ रहते हैं न रह सकते हैं; हम उन को उन के घरों में बाल बच्चों के बीच कैसे रहते हैं न देख सके; अधिक गरमी के कारण हम को अपने घरों के भीतर घुसे रहना पड़ता है और यथार्थ में तो यह है कि हम इस देश में विदेशी हैं"—

ऐसीही ऐसी बातें हैं जिन से यह गंगा यमुना का संगम रुक रहा है भारत वर्ष के महात्मा विचार शील जिस भांत "वसुधैव कुटुम्बकम्"-वाले सिद्धान्त पर आरूढ़ हैं उसी तरह उदार प्रकृति वाले श्वेतकाय प्रभुवर भी यदि कृष्णकाय वालों को पराजित जाति के समक्ष न अपने बराबर वाला मानैं तो साधारण मनुष्य कोटि में इन्हें गिनते रहैं तोभी फल दायक यह परस्पर का मेल दृढ़ और घनिष्ठ होता रहे—सर्कारी नौकरी के बड़े २ ओहदों में गौर और कृष्ण का भेद उठा दिया जाय तब सम्भव है कि श्वेत और कृष्ण दोनों एक हो ब्रिटिश शासन को हिन्दुस्तान में चिरस्थायी और दृढ़ कर दें—हम यह मुक्त कण्ठ हो कह सकते हैं कि जब तक श्वेतांग यहां के लोगों पर चित्त से मोह न करैंगे जेता बुद्धि को त्याग स्वार्थ को तिलाञ्जुली न देंगे जब तक यहां की प्रजा इन की दृष्टि में यथो चित सत्कार और आदरपात्र न होगी तब तक श्वेतकृष्ण का पूर्व पश्चिम का सितासित का संगम कदापि न होगा—उपसंहार में श्वेत और कृष्ण दोनों जातियों से यही प्रार्थना है कि ये दोनों ऐसा यत्न करैं जिस से परस्पर का मेल घनिष्ट होता जाय शासक और शासित में निष्कपट प्रीति भाव का

संचार हो जिस से देश को राजा को तथा प्रजा को आशातीत लाभ की संभावना अधिक अधिक होती रहे—

एक कृष्णकाय

मनुष्य जाति परिवर्तन शील है ।

उस के पहिले जब इतिहास या तवारीख का जन्म भी न भया था अर्थात् कोई लिखी हुई तवारीख न थी तब मनुष्य जैसे आजकल हैं वैसे न थे—पहिले मनुष्य जाति भी इतर जन्तुओं के समान थी इस का उदाहरण अब भी किसी २ जंगली फिरकों में पाया जाता है—ग्रीन लैण्ड के निवासियों को जाड़े से कांपते देख एक दयालु पथिक ने उन सबों को एक २ कम्बल ओढ़ने को दिया पर रात बीतने पर उन सबों ने कम्बल फेक दिया और वहां से चले गये—प्रायः जंगली लोग एकही स्थान में नहीं रहते बरन एक जगह से दूसरी जगह को हटा करते हैं उन को इतनी समझ नहीं रहती कि फिर रात होगी और कम्बल का काम पड़ेगा—ये जंगली पशुओं का मांस या मछलियां खाते हैं और उन्हीं पशुओं की खाल ओढ़ते हैं-कुछ दिन इस भांत रहते २ उन्हें स्मरण शक्ति आने लगती है तब वे पुरानी बातों को याद कर आगे की बातों को थोड़ा बहुत समझने लगते हैं—पहले के लोग लोहे के गुण नहीं जानते थे पत्थर की कुल्हाड़ी, बरछी, छूरी आदि बनाते थे और उन्हीं से पशुओं को मार खाते थे कई एक जंगली जाति अब तक पत्थरों के औज़ारों को काम में लाती हैं—उन को लोहे का ज्ञान तथा उस में क्या २ गुण हैं पीछे मालूम हुआ—कहीं २ योरप में गुफाओं के बीच ऐसे जन्तुओं की हड्डियां पाई जाती हैं जो पत्थर या तीर से बिधी हुई हैं—पशुओं की ठठरी पत्थरों के तीर से बिधी हुई अनेक स्थलों में पाई गई हैं—मनुष्य को अग्नि का ज्ञान विद्वान् लोग निश्चय करते हैं कि बांस के रगड़ें खाने से दावानल को

देख के हुआ पीछे मनुष्यों ने भी काठों को रगड़ के अग्नि निकालना सीखा—

जहां तक पता लगाया गया है अग्नि का उपयोग मनुष्यों को ज्ञात था कोई समय ऐसा नहीं जाना जाता जिस समय आग को काम में लाना न मालूम रहा हो--ऋग्वेद् में अग्नि की अनेक ऋचायें हैं और बायु पुराण में भी बहुत से इतिहास हैं जिस में अग्नि के बंश का बर्णन और अनेक प्रकार की अग्नि लिखी हैं-एक प्रकार के जंगली आस्ट्रेलिया के रहने वाले अब भी आग पैदा करने की रीति नहीं जानते और वे बड़ी सावधानी से अग्नि को रखते हैं-पहले पहल अग्नि उन्होंने कहां से पाया नहीं जाना जाता-ग्रीक लोग कहते हैं प्रोमेथियस स्वर्ग से जाकर अग्नि लाया था ठीक ऐसीही कथा हिन्दुओं में भी है कि मातरिश्वा ने अग्नि को उत्पन्न कर मनु और भृगु को दिया-ग्रीक नाम प्रोमेथियस संस्कृतही का जान पड़ता है-अग्नि उत्पन्न करने के लिये प्राचीन हिन्दू काठ का एक डंडा काम में लाते थे जिस को मंथ वा प्रमंथ कहते हैं-इसी प्रमंथ से बिगड़ कर प्रोमेथियस हो गया है हिन्दू लोग स्वस्तीक यंत्र के द्वारा अग्नि निकालते थे लगभग ऐसीही कथा पारसियों की धर्म पुस्तक ज़िन्दा बस्ता में भी मिलती है-भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार के यन्त्रों से अग्नि निकाली जाती थीं-

प्राचीन समय में मनुष्यों का भोजन केवल मांसही था, आस्ट्रेलिया के जंगली ह्वेल के सड़े मास को बड़े चाव से खाते थे--अब भी तो सभ्यों में अग्रगण्य अंगरेज़ लोग भी छः महीने की सड़ी मछली बड़े प्रेम से खाते हैं-चीनी लोग कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मेढ़क प्रसन्नता से खाते हैं-गैंडा, हाथी, इत्यादि का मांस भी खाया जाता था हाथी की हड्डियां बिलायत में गड़ी हुई पाई गई हैं-पहले मनुष्य कच्चा मांस खाते थे अफरिका में नर आहारी पुरुष अब तक पाये जाते हैं-अमेरिका में भी प्राचीन चिन्हों की कमती नहीं है विद्वान् लोग अनुमान करते हैं

कि अमेरिका में ६०००० वर्ष के पहिले से मनुष्य की बसती है—यहां भी मिस्र देश (इजिप्ट) में पिरेमिड के समान ऊंचे २ ढूहे पाये जाते हैं ये ढूहे यदि ४ एक साथ मिला दिये जांय तो सब से बड़े पिरेमिड के समान हो जांय; मालूम होता है ये ढूहे समाधि स्थान थे-अमेरिका के ढूहे बड़े अचरज के हैं एक सर्प के आकार का दूसरा मगर के अकार का है—जो सर्प के आकार का है वह १०० फुट परिधि में अंडा को खाता हुआ बना है; १००० फुट की लम्बाई का है—दूसरा ढूहा २५० फुट लम्बा है-इन ढूहों के भीतर पत्थर और ऊपर की सजावट कड़ी मिट्टी की है किसी २ का मत है कि पहिले मनुष्य पानी औटाना नहीं जानते थे आग में पत्थर डाल पानी बुझा लेते थे-रेनडियर नामक जन्तु के सींग का बना चम्मच कहीं २ खोहों में पाया जाता है-अपने से अधिक सामर्थ्य शाली को देख और आप भी वैसाही होने के लिये किसी की सहायता मांगने की आवश्यकता और प्रत्यक्ष में सब वस्तुओं का स्वामी किसी को न देख ईश्वर का ज्ञान आया—इसी तरह रहते २ काल पाय लोग गाय बैल भेड़ बकरी आदि पालने लगे उनके दूध तथा दूध से बने पदार्थों का बनाना सीखा जब लोग इस तरह रहने लगे तब उनमें विषम भाव फैला दुखी सुखी को देख डाह फैली उपरान्त समय बीतने पर खेती करना सीखा जिस से मनुष्य जाति को बड़ा सुख मिला--उपरान्त सोचने विचारने का उन्हें बड़ा समय मिला दिमाग की ताकत बढ़तीही गई और न जानिये कहाँ तक बढ़ती जायगी—साथही आलस्य और भोग विलास की इच्छा भी बढ़ती जाती है और वही संसार चक्र को फेरा करती है—जो उन्नति पर हैं नीचे को गिरे जाते हैं संसार में इस तरह का हेर फेर बराबर जारी है इसी से इस का नाम संसार पड़ा है—इस चक्र के चलाने वाले अलख अगोचर की अद्भुत महिमा है जिस का पार पाना मनुष्य कीट की शक्ति के बाहर है—इत्यलम् पल्लवितेन——

गया प्रसाद मिश्र

शिशुपाल वध नाटक

पहले के आगे से

द्वितीय अङ्क—प्रथम गर्भाङ्क

स्थान--राज मार्ग

उलूक भट्ट और कुक्कुट मिश्र का प्रवेश—

उलूक भट्ट—(पेट पर हांथ फेर) आज तो इतना खांयगे इतना खांयगे कि इस उदर हतक के किसी कोने में पानी पीने तक की जगह न छोड़ रक्खेंगे (डकारता हुआ) शस्कुली शब्द मात्रेण किन्दूरं पंच योजनम्—शस्कुली को कौन पूछता है यहां तो लड्डू खाने को मिलैंगे—लड्डू कः शब्द मात्रेण किन्दूरं शत योजनम्—हमें तो लड्डू मिलै तो शत योजन क्या सहस्त्र योजन फलांग मारते सरपट भागते जांय—अहहह! लड्डू ब्रह्माण्ड गोलक सा गोल २ मोदक केवल नाम मात्र जीभ पर आ जाने से लार टपकने लगती है—तब तो इसे मोदक नहीं मोद बर्द्धक कहना चाहिये—धन्य हैं वे जिन्हें प्रति दिन मोदक मिला करता है हम ऐसे पेटार्थू दरिद्रों को तो कभी ऐसा अवसर प्राप्त होता है—महाराज युधिष्ठिर की जै हो न राजसूय यज्ञ रचते न हफ्र के मन माना मोदक खाने का ऐसा समय हमें मिलता, पर देखा चाहिये ये सच्चे मोदक से कहीं केवल आशा मोदक न हो जांय और हम अर्द्ध चन्द्र दै अलग कर दिये जांय—इस लिये कि वहां तो पढ़े लिखे सकल शास्त्र विशारद का आदर किया जाता है और ऐसेही महा पण्डित वहां प्रवेश पाते हैं तब हम इन ऐसे अपढ़ मूर्खों को वहां कौन पूछेगा जिन्हे काला अक्षर भैंस बराबर है—बूढ़े हुये दूर की वस्तु हमें कम देख पड़ती है यह दूसरा कौन आ रहा है; क्या कहैं चश्मा भी भूल आये (जेब टोने लगता है) चश्मा भी इन दिनों खूब ज़ोर

पकड़े हुये है भला हमारी तो उमर चश्मा लगाने की है अब तो गर्भ के बालक भी माके पेट से निकलतेही अन्धे हो जाते हैं—बाहरे तेरी चश्मे बाज़ी चश्मा लगाय जब अकड़ के चलने लगते हैं तब उन की छवि देखतेही बनती हैं (तदाकार चलने लगता है) उस में भी जो कहीं किसी कालेज या स्कूल का दरवाज़ा झांक आये तब तो कहनाही क्या—अस्तु (आगे देख) बापरे बाप ई तो बड़कवा पण्डित है एहि के आगे हमन ऐसे लंठों को अब कौन पूछी अरे ई तो सब कुछ पढ़े है

"गुर्गोर्गिरः पंच दिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनद्वयंच।
अमी समाघ्रायच तर्कवादान् समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः"॥

(दूरही से चिल्लाय के) नमस्कार नमस्कार हो महाराज कुक्कुट जी—

कुक्कुट मिश्र—(स्वगत) राज सभा से आह्वान आया है बड़े २ पंडितों में हमारी भी गिनती हुई है नहीं जाते तो सब लोग यही समझेंगे कि गेहे नर्दी गेहे शूरः की भांत कुक्कुट मिश्र केवल घरही के पंडित बने थे मुकाबिले पर आने का जब अवसर आया तो दुम दबाय बैठ रहे—जाते हैं तो किस भरोसे पर जाँय; बड़े २ दिग् विजयी दिग्गज पंडितों के सामने अपना क्या मुह दिखावैं—शास्त्री बनैं तो कहीं एक बात भी ग्रन्थों के गूढ़ तत्व की कोई पूछ बैठा तो मुह बाय देंगे—जाने दो कवि कह अपने को प्रसिद्ध करैं तो पहले कवि कीसी प्रतिभा होनी चाहिये प्रतिभा न भी भई तो एक पद यहाँ का एक वहां का जोड़ (पदानि चाण्डालः) कुछ गढ़ दें सो इतना भी शऊर हमें नहीं है तो अपना परिचय वहां क्या देंगे "शास्त्रेण हीनाः कवयो भवन्ति काव्येन हीनाश्च पुराणभट्टाः" चलो अच्छा है आज पौराणिक बन किसी भांत निबहैं फिर देखा जायगा (आगे देख) अरे यह धूर्त चला आ रहा है इन के आगे तो एक भी न बन पड़ैगी यह हमारी सब कलई खोल देगा तो अब क्या करैं जो इस से किसी तरह प्राण बचै (आगे देख) क्या उलूक जी हैं कहिये कहां ?

उलूक-जहां तुम तहां—

कुक्कुट-(स्वगत) अरे यह तो अच्छी भद्रा साथ लगी राजा के यहाँ से जो बिदाई पावेंगे उस में यह भी अपना साझा लगावेगा जो हमें अकेले को देना राजा ने सोच रक्खा होगा उसमें अब २ साझीदार हुये यह बहुत बुरा हुआ तो अब इसे किसी भांत टरकाय पिण्ड छुटावें (प्रगट) पर हमें तो एक यजमान के यहाँ होम कराना है उसे निपटा के तब जांयगे तब तक तुम बढ़ो हम आतेही हैं—

उलूक-कुछ चिन्ता नहीं होम है तो कुछ भूरसी दक्षिणा हमें भी मिली जायगी—जब तक तुम होम कराओगे तब तक हम बैठे २ माला जपते रहेंगे आज हमने भी यज्ञ में जाने की उतावली में नित्य नेम पूरा नहीं किया (माला उतार जपने लगता है) हरे कृष्ण हरे कृष्ण—

कुक्कुट-(स्वगत) यह तो और विपत्ति हुई मालूम होता है यह मूर्ख किसी तरह हमारा साथ न छोड़ेगा—यजमान का तो केवल बहाना मात्र था प्रयोजन तो इसे किसी भांत टरका देने का है (सोचकर) अब कोई दूसरी बात निकालें (प्रगट) अरे अंगोछा और कुशा भूल आये सीधा पावेंगे तो किसमें बांधेंगे जांय लेते आवैं तब तक तुम यहीं ठहरो हम आतेही हैं (जल्दी २ चलने लगता है)

कुक्कुट-हमारे पास कुशा है (पोथी खोल देने लगता है) और अंगोछा भी इतना बड़ा है कि सीधा क्या तुम समेत इस में बांध दिये जा सकते हो तौभी साई के कांटा समान लम्बी दुम इस में निकली ही रहेगी-ठहरो २ भागो न (पीछे दौड़ता है) सच है "वाम्हन नाऊ काऊ जाति देख गुरांऊ" पकड़ो २ जाने न पावै (दोनों गये)-शेष-

दो मित्र ।

"पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यानि गूहति गुणान्प्रकटी करोति । आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षण मिदं प्रवदन्ति सन्तः" ॥ भर्तृहरि ।

किसी राजा और मंत्री के कुमारों में बड़ी मित्रता थी ; यहां तक कि एक से विलग दूसरा एक पल भर भी नहीं रह सक्ता था इन के राग रंग खान पान चलना फिरना सब काम एक साथ हुआ करते थे । लोग इन के प्रेम पन्थ की पराकाष्ठा देख चकित होते थे । दोनों की अवस्था समान-रेख भीन रही थी । जवानी के उमंग में जो चाहते कर डालते थे; कभी किसी बात की थोही नहीं मंत्री कुमार राजकुँअर से अधिक चतुर था । एक दिन प्रसंग वस लहर आगई कि परदेश चलकर अपने गुणों की परख करनी चाहिये । बस विचार की देर थी चट राजा से आदेश ले अस्त्र शस्त्र से सज धज घोड़े पर चढ़ रवाना हुये । चलते २ मार्ग में एक बड़ा घोर जंगल पड़ा एक तो सुकुमार शरीर, दूसरा अकाल का घाम, राजकुमार को प्यास लग आई घोड़ा रोक कर बोला । "ऐ मित्र! मुझे बड़े ज़ोर से प्यास लगी है पानी का प्रबन्ध करो तो ठीक हो मुझ से आगे नहीं चला जाता" यह सुन मंत्री कुमार ने झट उतर कर घोड़े को एक वृक्ष की जड़ से बांध दिया और पास के एक ऊंचे वृक्ष पर चढ़ कर दृष्टि फैलाई दूर पर देखा कि कुछ जल पक्षी उड़ रहे हैं आनंदित हो दिशा का निश्चय कर वह नीचे उतरा और राज कुमार से बोला "प्रिय स्वामी! आप यहीं ठहरिये, मैं पानी लेकर अभी आता हूं" यह कह घोड़े पर सवार हुआ और निश्चित दिशा की ओर बढ़ा; थोड़ी देर में वह एक सुन्दर सरोवर के निकट आ पहुंचा इतने में उसे भी प्यास लग आई आस पास देखा, कोई जीव जन्तु नहीं हैं ; केवल

पानी पर जलचारी पक्षी किलोलें कर रहे हैं माना कि दीनबन्धु ईश्वर ने हमारे संचित कर्म के पलटे यह सरोवर ऐसे घोर अरण्य में निर्माण कर दिया है। उत्तर की ओर एक घाट सँगमर्मर का मनोहर बना हुआ देख कर घोड़े से नीचे आया, और घाट पर उतर कर आप पेट भर पानी पिया तले की सीढ़ी पर एक स्त्री की मूर्ति लिखी हुई थी उस पर अचानक उस की दृष्टि पड़ी उसे देखतेही कहने लगा "आहा! ऐसे निर्जन स्थान में यह स्त्री कहां से आई!" इस नवयुवती का चित्र अवश्य किसी घटना का हेतु होगा। पुनः सोचा कि यदि मैं यह दूध सरीखा जल लेकर जाऊं और राज कुमार उसे पी उसके स्वाद से लुभा कर कदाचित् यह कह उठें कि "मित्र! चलो यह जल स्थान कहां है मुझे बतलाओ और यहां आतेही इस पर उन की आँख लग जाय और कदाचित् हठ कर बैठें कि यह स्त्री मिलेगी तभी मैं यहां से पांव हटाऊंगा तब तो महा संकट होगा" ऐसेही विचार से उसने उस स्त्री के चित्र पर कीचड़ थोप दिया और जल गँदला कर राजकुमार के पास ले गया उस ने पान किया फिर कुछ स्वस्थ हो कहने लगा प्रिय मित्र इस के लिये जैसा तुम ने प्रयास उठाया वैसाही मधुर जल पीने को मिला है जहां का जल इतना मीठा है उस का जलाशय न जानें कितना मनोरम होगा। आहा! मित्र!! उस स्थल का मुझे शीघ्र दर्शन कराओ इसे बिना देखे मेरा जी नहीं मानता। यह सुनतेही मंत्री कुमार मन में सकाया सोचने लगा कल्पना भी देखो ठीक उतरा चाहती है पर ईश्वर जो करता है वही होता है; गम्भीर भाव से बोला मित्र देखिये! हम लोग अब तक किसी ग्राम में नहीं पहुंचे हैं बीचही मे इस भयंकर जंगल में आ फँसे हैं अब दिन थोड़ा रह गया है सरोवर को जाने और वहां से लौटने में सूर्य छिप जायगा रात भी अंधेरी है और यहां रहने में अनेक दुस्तर भय हैं प्यास से जो घबराहट थी सो जाती रही इस लिये आगे चलना चाहिये इसी भांत मंत्री कुमार ने बहुत तरह समझाया पर राजसी

हठ के आगे कुछ भी वश न चला अन्त के विवश हो वह राज पुत्र के उसी सरोवर के ले गया । स्थान तो रमणीक थाही; राजकुमार के और भी अधिक सुहाया उस ने कहा प्रिय मित्र, आज यहीं रहें, प्रातःकाल होते जाँयगे उस का रुख देखकर मंत्री कुमार के हां कहना पड़ा दोनों घोड़ों से उतरे और अपने २ घोड़े वृक्ष की जड़ से बांध दिया दोनों मित्र इधर उधर टहलते प्रकृति की शोभा देख २ मन बहलाने लगे। चलते २ घाट पर पहुंचे उस की चित्रित शोभा से राजकुमार के बड़ा आराम मिला वह एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर उतरता और रचना चातुरी देखता हुआ एक छोर से दूसरी छोर तक ढीले पांव चलने लगा क्रमशः वह नीचे वाली सीढ़ी पर गया दो एक डग रक्खे हैं कि कीचड़ देख रुक गया कहने लगा "मित्र! देखो तो किस मूरख ने यहां कीचड़ कर दिया है ऐसे सुन्दर स्थल में विशेष कर नहाने धोने के घाट में कीचड़ डालते समय छिः उसे ज़रा भी हिचक न आई„। मंत्री कुमार ने संवार कर कहा कि कदाचित् औरतें रात के नहाने आई होंगी; और पार्थिव पूजा की है। यह सुन राजकुमार पानी में हल कर उसे धोने लगा मंत्रीकुमार से न रहा गया वह भी पानी में कूद पड़ा और तुरन्त धो धा उसे साफ़ कर दिया धोतेही चित्र चमक उठा मंत्रीकुमार घबरा कर बोला ठहरो २ मित्र! यहां तो कोई स्त्री है; निकल कर कुछ बोलाही चाहती है वह तो खींची हुई प्रति मूर्ति थी बोले काहे के! राज पुत्र उस के आंख भर देख नख शिख की सुन्दरता से बिलकुल मोहित हो गया कुछ देर के पीछे बोला मित्र जी! अब तो मैं यहां से नहीं जाने का, जब इस स्त्री का पाणि-ग्रहण करूंगा तभी टलने का नाम लूंगा नहीं तो यहीं अपने प्राण पखेरू का पिंजरा खोल दूंगा मुझे इस सारहीन संसार में यही संसार दीखता है इतना कह वह वहीं बैठ गया उस का मन अपने बश न रहा उस की यह दशा देख मंत्री कुमार बड़ाही घबराया गहिरी सांस ले बोला, प्रभू! धीरज धरिये बड़ी २ अपूर्व चीज़ें मिल

जाती हैं इस के मिलने में कौन कठिनता है? चलिये अभी आराम तो करें॥

पश्चात् दोनों निकटही एक वृक्ष के नीचे आए और अपने २ कपड़े उतार कर रख दिये। दिन मणि धीरे २ अस्ताचल के पीछे छिपने लगा सांझ हो गई, मंत्रीकुमार आस पास से कुछ फल मूल पेट पूजा को खोज लाया और दोनों ने अपनी आत्मा ठंढी की अब रात गहरा चली जंगल भयानक दिखाई देने लगा। नीचे सो जाने से भय की शंका कर वे दोनों उस वृक्ष के ऊपर चढ़ गये, और पारी बांध कर सोने और जागने लगे। आधी रात के समय उस तालाब से एक बड़ा विशाल विषधर सर्प निकला उसके निकलतेही चारों ओर प्रकाश छा गया वह सर्प तैरता हुआ घाट पर आया और उस प्रकाशमान् पदार्थ को बाहर निकाल कर इधर उधर घूमने लगा। वह प्रकाश उस के मणि का था इधर मंत्री कुमार जिसके जागने की पारी थी सब हाल आंख फाड़ २ कर देख रहा था उस ने चुपचाप राजकुमार को जगाया और कहा कि यह सर्प इसी तालाब में से निकला है और वह देखिये मणि के प्रकाश में चल रहा है थोड़ी देर तक दोनों उस की ओर निहारते रहे सोत्साह राज पुत्र बोल उठा कि मित्र मैं जाकर इस मणि को अभी ले आता हूं पर हाथ लगतेही जैसे सर्प मुझ पर कूदे वैसेही तुम उसे खड्ग से काट डालना दोनों ने यह सम्मति पक्की कर ली और ताकने लगे कि कैसे यह ओट में आवे और हम नीचे उतरें देखते २ वह सांप वहां आ गया जहां घोड़े बंधे थे वह नाग इतना भारी था कि दोनों घोड़ों को खड़े २ निगल गया तब भी भूख न मिटी हांते २ लोभ के मारे वह कुछ दूर निकल गया जहां तक कि मणि का प्रकाश छिटका हुआ था। दोनों मित्र जो दांव ताक रहे थे झट नीचे उतरे राजपुत्र दबे पांव मणि के पास चला आया ज्योंही उस ने मणि को उठाया त्योंही सर्प फुफकारता हुआ दौड़ा

किन्तु सद्यः घोड़ों के निगले रहने से शरीर भारी हो गया था तौ भी तुरंन्त मंत्री कुमार के पास चला आया और फन सिकोर उसे पकड़ना चाहा परन्तु मंत्रीकुमार ने चट तलवार मियान से खींच ऐसा वार जमाया कि सर्प दो टुकड़ा हो धरती पर तड़फने लगा बस एक क्षण में अपूर्व मणि हाथ आ गया दोनों प्रसन्न चित्त हो वृक्ष के नीचे आये बातें करते २ पूरब दिशा लाल हो गई ॥

सबेरा हुआ स्नानार्थ दोनों तालाब में पैठे; पर यह देख उन को आश्चर्य हुआ कि ज्यों २ वे पानी में घुसते जाते हैं त्यों २ मणि के प्रभाव से पानी फटता जाता है तालाब की तलहटी पर देखते हैं कि एक मन्दिर सुन्दर बना हुआ सूनसान है; भीतर सोरह बरस वाली एक स्त्री पलंग पर लेटी एक पांव के घुटने पर दूसरे को रख हिला रही है इन के जाने की आहट पा वह चट उठ बैठी और इन दोनों को देख आश्चर्य करने लगी कि इस अगम स्थान में ये आये कैसे? कहा, ऐ मनुष्य कुमारो! तुम यहां क्यों आये? जाओ भाग जाओ नागराज आतेही तुम को उठा कर खा जायगा मंत्री कुमार ने कहा हे मनमोहिनी! हम को नाग का कुछ भी भय नहीं है भय केवल तेराही है अनन्तर सब वृत्तान्त जैसा का तैसा कह सुनाया नाग कन्या की आंखें डबडबा गईं; सकरुण बचन से बोली की मैं उसी नागपति की बेटी यहां रहती हूं आज तक मैंने कहीं बाहर का मुख नहीं देखा पिता मेरे जो ला देते वही खाकर तृप्त रहती थी हां, नहाने धोने के लिये तालाब को जाती और नहा धो फिर लौट आती थी। एक दिन मैंने अपना प्रति रूप घाट की नीचे वाली सीढ़ी पर खींचा और यह प्रतिज्ञा की कि इस रूप को देख कर जो पहिले मुझ से मिलेगा उसी से विबाह करूंगी तब राज कुमार मंत्री कुमार के कान में बोला "मित्र! हम दोनों ने इसे देखा है इस लिये यह अब से दोनो की हुई" यह सुन मंत्री कुमार को कुछ हर्ष और कुछ विषाद हुआ विबाह होना निश्चय

ठहरा पर मंत्रीकुमार ने कहा कि विवाह होने में कुछ अटकाव तो नहीं है किन्तु हे मित्र! कहो तो मैं जाकर राजा को इस का समाचार देऊं और बरात सजा लिवा लाऊं पश्चात् विधि पूर्वक विवाह कर इसे ले जावेंगे। मंत्री कुमार की बात उसे अच्छी संगत जंची और उस ने वह मणि हाथ में ले लिया और चला पानी पर पांव धरतेही रास्ता खुल गया वह कुशल पूर्वक शहर को आया और अपने आने का कारण राजा से कहा; मणि को वह जी के साथ अपने पास रक्खा करता था उस ने किसी से उस का भेद न कहा॥

नाग कन्या नित्य स्नान के लिये उस घाट पर आती थी उस के पास एक ऐसी नाव थी जो जिधर चलने की इच्छा होती उधरही चलती थी इसी पर वह आया जाया करती, जिस राज्य के अन्तर्गत वह तालाब था वहां का राजा प्रति दिन इस जंगल में सिकार खेलने को आया करता था। एक दिन प्यास का मारा वह घाठ पर आया उस समय वह नाग कन्या वहां स्वच्छन्द हो कर नहा रही थी राजा को देखतेही नाव पर चढ़कर तुरन्त पानी में लय हो गई राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ पानी पी उस दिन तो चला गया पर दूसरे रोज उसी समय फिर वहीं आया और वैसेही उसे देखा अब राजा को इसका चसका लग गया उस के देखे बिना उसे चैन नहीं पड़ती थी-वह रोज़ वहां जाता पर देखतेही देखते वह कन्या नाव पर चढ़ पानी में समा जाती थी बहुत दिन तक राजा उस के पीछे लगा पर उस का मनोर्थ सिद्ध न हुआ। एक दिन वह बड़ा हताश हो घर आया और अपने देश के प्रायः १५०० बढ़इयों को बुला कर हुक्म दिया कि कल तुम सब मिलकर हम को ऐसी एक नाव बना दो जो पानी पर हमारी इच्छा के अनुसार चले, अगर कल तक इस आज्ञा का पालन न होगा तो सब के सिर काटे जांयगे। अपने ऊपर राजा की ऐसी तीक्षण दृष्टि देख वे सब डरे और विचारने लगे कि इस असाध्य रोग का क्या उपचार करैं? अन्त में लकड़ी के लिये एक जंगल में गये जल आदि

का आराम देख कर एक २ वृक्ष के नीचे सबों ने अपनी २ झोली रक्खी चिन्ता में सब का मन मलीन था उन में एक बढ़ई बुड्ढा था जो अकेला एक कदम्ब वृक्ष के नीचे पड़ा कराहता हुआ गहिरी सांसें ले रहा था नींद का नाम नहीं उस वृक्ष पर एक गिद्ध का घोंसला था; उस में कई बच्चे थे जब उनके मा बाप बाहर से आये तो वे चारे के लिये चिल्लाने लगे मा ने समझाया कि आज जो कुछ है खाओ, कल १५०० बढ़ई सबंश मारे जावेंगे, मनमाने पेट भर मांस खा लेना बच्चों ने पूछा क्यों वे सब ऐसी निष्ठुरता से क्यों मारे जावेंगे? उस ने कहा कि राजा ने एक नाव बनाने की आज्ञा दी है परन्तु वैसी नाव इन के बाप से भी नहीं बनेगी इसी से वे सब मारे जावेंगे एक ने फिर पूछा "मा! क्या ऐसी नाव कभी नहीं बन सक्ती?„ मादा ने कहा "जिस वृक्ष पर हम सब रहते हैं इसी से वह नाव बन सक्ती है" बूढ़े बढ़ई को पक्षियों की बोली मालूम थी वह सब बात समझ गया मन में पुलकित हो सब को उठाकर यह हाल कह सुनाया सबेरा होतेही उस झाड़ को काट नाव तैयार कर राजा को भेंट कर दी राजा बड़े प्रसन्न हुये और बढ़इयों को अच्छा इनाम दिया पश्चात् उस नाव पर चढ़कर कहा "रे नाव! तू, जहां पर वह नाग कन्या होगी, चलकर मुझे दिखला; मैं उसे लाऊंगा" नाव सच्चे दास के समान उसी सरोवर को चली जहां वह नाग कन्या रहती थी उस समय वह कन्या ठीक नहा रही थी राजा उसे बल पूर्वक अपनी नाव पर बिठला उसे घर ले आया॥

मंत्रीकुमार नगर में था अब तक फिरा नहीं था इधर यह हाल हो गया—राजकुमार तालाब के भीतर मन्दिर में अकेला बन्द हो गया उस के पास तो मणि थाही नहीं रहता तो घाट पर आ जाता जब बहुत देर हो गई और नाग कन्या मन्दिर को नहीं लौटी तो वह बहुत आकुल हुआ अनेक वितर्क करता हुआ दैव का मारा ज्यों त्यों

दिन बिताने लगा कुछ काल के अनन्तर मंत्रीकुमार खूब धूमधाम से उस तालाब पर आपहुंचा । सब को वहीं रख आप मणि को हाथ में ले पानी में घुस पड़ा । मन्दिर में जाकर देखता है तो राजपुत्र अकेला कृश तन, शिर नीचा किये बैठा हुआ है कन्या नहीं है दोनों मित्र परस्पर भुज भेंट मिले राजपुत्र ने अपनी दुख भरी कहानी सुनाई । मंत्री कुमार ने कहा आप यहीं रहें, मैं जाता हूं, उसे ढूंढ़ लाऊंगा निदान अनेक प्रकार से धीरज बंधा राजकुमार को वहीं छोड़ तालाब के बाहर आया जितने बराती आये थे सब को घर जाने की बिदाई दी और देश २ के राजाओं का सन्देशा लेने लगा कि किस राजा ने नया विवाह किया है ऐसीही ख़बर लेता वह उस नगर को पहुंचा जहां के राजभवन में वह नाग कुमारी रहती थी उस ने उस शहर की एक वृद्ध मालिन से पूछा कि इस राजा के कितने पुत्र हैं मालिन ने कहा "बेटा तू कहाँ रहता है ? हमारे राजा ने तो अभी शादीही नहीं की है एक कन्या को एक तालाब से ले आया है पर उस की तपस्या अभी पूरी नहीं हुई है इसी से वह एक अलग महल में रक्खी गई है जब तपस्या पूरी हो जायगी तब राजा उस का पाणि ग्रहण करेगा" यह समाचार सुन कर मंत्रीकुमार मन में कहने लगा कि अब ईश्वर ने कृपा की, आपत्ति दूर हुई । फिर मनसूबा बांध एक दिन राजा के साम्हने गया और कहने लगा कि महाराज ! मैं श्रीमान् का नाम सुन कर चला आया हूं प्रार्थी हूं कि एक पाव भर आटे से मेरी रक्षा की जाय" राजा ने पूछा तुम क्या नौकरी करोगे मंत्रीकुमार बोला कि मैं राजद्वार का पहरा रात को खड़े २ दे सक्ता हूं । यह काम मेरा किया हुआ भली भांति हो सकेगा मैं भरोसा रखता हूं कि श्रीमान् मेरे इस काम से बड़े सन्तुष्ट होंगे राजा ने हुक्म उसी महल का पहरा देने का दिया जिस में वह नाग कन्या रहती थी रात आधी हो जाने पर वह कन्या के निकट गया और अपना परिचय उसे दिया कन्या चट उसे पहिचान गई अब वहां से दोनों की भागने की राय ठहरी पर

कैसे भगेंगे इस के लिये वे बड़े बिचार में पड़े राजा की बनवाई हुई नाव वहीं थी दोनों उस में चढ़े इच्छा करतेही शीघ्र उसी सरोवर पर आ दाखिल हो गये। मंत्रीकुमार के पास वह मणि थाही उसी के गुण प्रभाव से दोनों राजकुमार से जा मिले वहां जो कुछ धन दौलत थी सब बांध बूंध सीधे अपने नगर को चले चलते २ दिन ढल गया, एक देवालय तथा पानी का सुपास देख कर वहां ठहरने की सम्मति हुई यह कोई तीर्थ कुण्ड था दैव योग से उस दिन उस कुण्ड में स्नान करने का वारुणी योग पड़ा था राजपुत्र, मंत्रीकुमार तथा वह नाग कन्या सब के सब थके मांदे तो थेही; पेट में कुछ पड़ जाने से आलस्य ने आघेरा शीघ्र नींद लग गई। परन्तु मंत्रीकुमार बड़ा चतुर था जगे २ सोता था पिछली रात को उस कुण्ड में स्नान करने के लिये एक भीड़ सब से पहिले आई उन की आहट पा मंत्रीकुमार कुछ सचेत हो गया पर लेटाही रहा और कान लगा उन की बात चीत सुनने लगा वह जमात बिलकुल निकट पहुंच गई मंत्रीकुमार ने कई लक्षणों से ताड़ लिया कि यह देव मंडली है फिर आंख मून्द नाक बजाने लगा देवता गण स्नान ध्यान कर उक्त मन्दिर के प्रतिष्ठित देवता का दर्शन कर जब चलने लगे तो एक ने कहा कि तुम लोगों ने क्या देखा? यह एक जोड़ी सुन्दर स्त्री पुरुष की यहां कैसे निर्भय सोती है दूसरा बोला, सोती तो है पर क्या हुआ; काल बहुतही निकट है उस ने पूछा कैसे? तब जवाब मिला कि यह राजपुत्र जब अपने राजमहल मे घुसा चहेगा तो ठीक उसी समय सिंहद्वार* घहराय के उस के ऊपर गिर जायगा; जिस से कि तुरन्त वह मर जायगा अरे! तो क्या वह मरही जायगा, बचने का कोई उपाय नहीं है? दूसरा बोला हां, उपाय है; जब वह सिंहद्वार उस के जाने के पहिलेही तोड़ दिया जायगा तो राजपुत्र को कोई डर नहीं है परन्तु बात यह है कि इस उपाय को

*सिंहद्वार एक फाटक का नाम है।

जो कोई कहेगा वह उसी दम पत्थर बन जायगा। ऐसी बतकही करते हुए देवतागण चले गये। पितृ लोग आये स्नानादि कर चलते समय वही बात फिर उठी "यह राजपुत्र जब गरुड़ नामक घोड़े पर चढ़ेगा तो वह घोड़ा किसी की कुछ भी न मानकर उसे समुद्र में डुबो देगा हां, जब पहिलेही इस घोड़े को कोई मार डाले तो राजपुत्र बच सकता है यह भी है कि यह बात जिस किसी से प्रगट होगी वह तुरन्त पत्थर का रूप धर लेगा" पितृ लोग भी यह कह चले गये पीछे नाग गणों के आने की पारी आई उन्होंने वैसाही स्नान आदिक कृत्य किया जब वे चलने लगे तो वैसीही बात चीत चली एक ने कहा "भाई! क्या कहते हो इस राजपुत्र की मृत्यु अब निकट आ गई है जब यह अपनी स्त्री सहित घर पहुंचेगा इस की सौतेली मा सुवर्ण की थाली में जो पदार्थ खाने को इसे परसेगी वह विष मिश्रित रहेगा उस के खातेही राजपुत्र चल बसेंगे अगर कोई ऐसा उस का हितू हो जो परसे अन्न को फेंकवा देवे तब तो राजपुत्र की रक्षा हो सकेगी यह बात प्रगट करने के योग्य नहीं है; जो कोई इसे दूसरे से कह देगा वह तुरन्त पत्थर हो जायगा" सब से पीछे नर लोग स्नान के लिये उस तालाब में आये और जाते समय राजपुत्र के विषय में उसी प्रकार प्रश्नोत्तर करने लगे उन में से एक ने कहा "अब यह दम्पति निज मन्दिर में प्रवेश करेंगे और प्रथम समागम की रात दोनों एकही सेज पर लेटे रहेंगे उसी रात को पलंग के एक खुरे से एक नाग निकल कर राजपुत्र को डंस लेगा अलबत्ता जब रात भर कोई खड़े २ पहरा देता रहे और सांप के निकलतेही उसे मार दे तब राजपुत्र की रक्षा हो भाई यह बात बड़ी गोपनीय है इसे जो कोई किसी को विदित करेगा पत्थर हो जायगा," ये सब होनहार बातें मंत्रीकुमार चुपचाप पड़े २ सुनता था इतने में भोर हुआ उस ने उठकर राजपुत्र से कहा कि स्वीकार करो तो मैं आगे चलकर राजा से आप के आगमन

का समाचार दे दूं इस प्रकार अनुमति ले वह नगर की ओर रवाना हुआ राजा के सामने आकर बोला "महाराज! राजकुमार कुशल पूर्बक सपत्नीक आ रहे हैं आप को सन्देशा देने के लिये मुझे भेजा है उन्होंने यह भी आज्ञा दी है कि मेरे आने के पूर्बही गरुड़ नामक घोड़ा मार डाला जाय और सिंहद्वार गिरा दिया जाय यह समाचार पा राजा बड़ा प्रफुल्लित हुआ गरुड़ाश्व मार डाला गया और सिंह-द्वार का निशान भी न रहा दो दिन के पश्चात् राजपुत्र घर पहुंचे पीछे जेवनार हुआ सौतेली मा ने सोने के थाली में कलेवा भोजन के लिये ला रक्खा मंत्रीकुमार बराबर हाज़िर रहता था खाने को जाने के पहिले अपने मित्र से हाथ जोड़ बोल चुका था कि महा-राज! मैं आप के बहुत काम आया हूं आज मेरी एक बात आप को मनानी पड़ेगी राजपुत्र के पूछने पर बतला दिया कि जब आप की मा खाने को थाल परसे उसे नखाकर इधर उधर फेंक दीजिये राजकुमार ने यह बात अङ्गीकार करली बस उस ने वैसाही किया जब माता ने फिर दूसरी थाली परसी तो उस ने रुचिपूर्बक भोजन किया। जिवनार होगई रात को मधुशय्या का प्रबन्ध हुआ, नव दुलहिन दूलह का एक सेज में शोभित होने का समय आगया राजकुमार जब अन्तःपुर के दरवाज़े में पहुंचा तो उस समय उस ने मंत्रीपुत्र से कहा हे मित्र! तुम ने बहुत बहुत काम किये हैं; जाइये अब घर जाय विश्राम करो परंतु मंत्रीकुमार ने उत्तर दिया कि आज भर मेरा और काम है आप दोनों शयन करें मैं यहीं रात भर रहूंगा इतना करने से मेरी सेवा पूरी हो जायगी। मंत्रीकुमार ने जितनी ऊंच नीच सह कर उपकार के अमोघ फल खिलाये थे उन का नष्ट कर देना कृतघ्नता है यह सोच राज-कुमार ने कहा "बहुत अच्छा" मधु शय्या में दोनों लेटे और उधर तलवार ले मंत्री का लड़का पहरे पर खड़ा होगया अब बर कन्या दोनों नींद में घुर्राटें ले रहे हैं; आधीरात हो गई; नगर के कुत्तों को छोड़कर सब चुपचाप हैं वह काल की घड़ी आ पहुंची पलंग के पावे से एक

काला सांप निकला और राजकुमार की ओर चढ़ने लगा मंत्रीकुमार तो जागताही था तलवार से शीघ्र उसे काट डाला अदृष्ट बड़ा बली है! मारते समय एक बून्द खून छिटक कर कन्या के गाल पर जा लगा मंत्रीकुमार मरे सांप के तो बाहर फेंक आया और चाहा कि दुलहिन के गाल पर का रक्त पोछ दूं उसने तलवार की नोक पर अपना दुपट्टा बांधा और उसी से पोंछने के हाथ बढ़ाया तलवार कुमारी की गाल तक गई है कि राजपुत्र ने करवट बदली उस का शरीर से छूतेही झट वह उठ बैठा और चमक कर देखता है तो मंत्रीकुमार नंगी तलवार लिये पलंग की ओर कुछ झुके हुये खड़ा है राजकुमार की आंखें लाल हो गईं और होठ क्रोध से फड़कने लगा एकबारगी कूद कर उस की चोटी पकड़ली और कहा कि अरे! मैंने तो पहिलेही कहा था कि दोनों इस से शादी करें, फिर तूने वह बात क्यों न मानी? इस वक्त क्या खाट पर काम वश हो कूदा था? क्यों ऐसा किया? बता, नहीं तो तेरा सिर अभी धड़ से अलग किये देता हूं मेरी भी जीने की आशा नहीं है तुझ के मारकर मैं भी मर जाऊंगा मंत्रीकुमार ने पछताकर मन में कहा कि ऐसा बना बनाया काम विगड़ गया खैर! जी जावे चाहे रहे इस की कुछ चिन्ता नहीं है परन्तु यदि मैं इसका कारण नहीं कहता हूं तो यह आत्मघात कर लेगा विचारते २ उसका गला भर आया बोला कि "मेरा यह नीच अभिप्राय नहीं है जैसा आप मुह पर लाते हैं„ वह ईश्वर की शाखी देकर सौगंध खाने लगा पर राजपुत्र ने नहींही माना उस का हठ देखकर मंत्रीकुमार शिथिल हो बोला "हे मित्र! हे महाराज! सच तो यह है कि जब मैं इस का कारण प्रकाश करूंगा पत्थर हो जाऊंगा इस लिये आप क्यों इतना आग्रह करते हैं कृपा कीजिये मैं आप का हूं राजकुमार के यह सब गढ़न्त और बहाना सूझा धिक्कार कर बोला" मनुष्य कभी पत्थर हुआ है?

ऐसी असम्भव बात कह २ कर मुझे भुलाया चाहते हो? मैं समझ गया तुम्हारी छल बाज़ी मुझे मारकर इसे विवाह करना चाहते हो—

इस बात के सुनतेही मंत्रीकुमार को जले पर नोन कीसी बेदना हुई मन को सम्हाल नम्र बचन बोला "मित्र ! भला मुझे भूलना नहीं मैं पत्थर हो जाऊं तो आप उसे अपने अन्तःपुर में रखना जिसे देख आप लोगों को स्मरण तो होता रहेगा कि हमारा एक मित्र था"। इतना कह देव पितृ नाग और नर गणों का कथानक सब स्पष्ट कह चला सिंहद्वार की कथा पूरी होतेही उस के दोनों पांव पत्थर हो गये गरुड़ अश्व की कथा से कटि तक, विष मिश्रित भोजन की बात से गले तक, पत्थर हो गया तौभी राजकुमार को कुछ ख्याल नहीं है सांप की कहानी कहते २ सम्पूर्ण शरीर पाषाणमय हो निश्चेष्ट प्रतिमा सा खड़ा रह गया। यह देख राजपुत्र का गला सूख गया अपने हठ पर पश्चात्ताप करने लगा बुद्धि गुम हो गई कन्या से कहा "अब मैं यहाँ रह कर क्या करूंगा मित्र के विना मेरा सब वृथा है मैं जाता हूं अपने मित्र को फिर मनुष्य करूंगा तब यहां आ मुह दिखलाऊंगा नहीं तो समुद्र में कूद अपना प्राण भी देदूंगा', स्त्री ने अनेक तरह से उसे घर रखना चाहा पर उस ने एक भी नहीं सुनी मित्र की पाषाण मूर्ति कंधे पर धर ११ बर्ष तक पर्य्यटन करता रहा बारह बरस होते २ वह एक दिन निराश हो एक वृक्ष के नीचे सो गया चिन्ता से नींद थोड़ीही आती है ऊपर उस वृक्ष के निवासी पक्षियों की चिचिआहट सुन कर उसी ओर देखने लगा; जिधर से आहट मिलता उसी ओर कान खड़ा कर लेता उस का शोक अकथनीय था निदान एक झपकी सी आई स्वप्न में देखता है तो मानो साम्हने कोई भस्म रमाये जटा बढ़ाये साधु के वेष में आ कर कह रहा है "अए राजपुत्र! तूने अपने मित्र का तिरस्कार किया और अन्धा हो उसका कहना न माना सर्वथा अविश्वासी जाना उस का फल पा चुका अब चिन्ता त्याग कल इस वृक्ष की जड़ की मिट्टी मंत्रीकुमार के शरीर पर खूब पोत और ४ घड़ा पानी उस पर डाल वह पुनर्ज्जीवित हो उठेगा— इतनी भनक कान में पड़तेही वह चौंक कर उठ बैठा आस पास देखा कोई नहीं है निदान निश्चय किया कि

उस अन्तर्यामी ईश्वरही ने मेरी दशा को देखा और दयालु हो उपाय बतलाया है—चलूं झटपट उस आज्ञा का पालन करूं इतना कह तुरंत अपने मित्र की पाषाणमयी प्रतिमा को उसी वृक्ष के जड़ की मिट्टी से खूब पोता और ४ घड़े पानी उस पर छोड़ा—मंत्रीपुत्र राम २ कहते आंखें मींचता हुआ उठ बैठा दोनों आपस में गले से गले लग करुणा-स्वर से अत्यन्त विलाप कर घर की राह ली। घर पहुंचते २ बारह वर्ष पूरे हो गये राजा मंत्री प्रजा गण सब प्रसन्न हो ईश्वर का धन्यवाद करते हुये सुख से दिन काटने लगे—आशा है हमारे पढ़ने वाले भी इस अनोखी कहानी को पढ़ सुख उठावेंगे—

अनन्त राम पाड़े, रायगढ़

अभिनव गुप्त।

ये एक प्रसिद्ध आलङ्कारिक थे। मत इन का शैव था क्योंकि इनके बनाये ग्रन्थों में से शैव दर्शन का भी एक ग्रन्थ है इनका निवास स्थान कश्मीर था और काव्य प्रकाशकार मम्मट भट्ट के ये गुरू थे यह बात काव्य प्रकाश के चौथे उल्लास के देखने से स्पष्ट विदित होती है। इन के रचित और २ ग्रन्थों के नाम भैरवस्तोत्र, प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी बृहतीवृत्ति, तन्त्रालोक, बोधपञ्चाशिका और लोचन हैं। लोचन आनन्द बर्द्धन कृतध्वन्या लोक की टीका है इस ग्रन्थ में अभिनव गुप्त अपने गुरु काव्य कौतुक के रचयिता तौत का नामोल्लेख करते हैं। ये कवि अनुमान सन् ९९३ ई० से १०१५ ई० तक के बीच में थे। इनके विषय में निम्न लिखित कथानक सुनने में आता है:—

"प्राचीन काल में ब्राह्मण बालकों के पढ़ने के लिये बलभी नगर में एक पाठशाला थी। वहां पर एक गौड़ बालक अत्यन्त सुबुद्धि

और बाचाल था। अतएव उस के सहपाठीगण सदा उस से भयभीत रहते थे। निदान गुरू ने उस को बाल बलभी भुजङ्ग की उपाधि दी थी। इसी बात को जान के मम्मट भट्ट ने उसका अभिनव गुप्तपाद (सर्प) आचार्य के नाम से उल्लेख किया है"॥

अमर सिंह।

संस्कृत में नामलिङ्गानुशासन नामक जो कोश है उसे संस्कृत विद्यारंभ करते समय प्रायः सभी विद्यार्थी कण्ठाग्र करते हैं। उसका नामान्तर अमरकोश भी है। अमर कोश इन्हीं अमरसिंह का बनाया है। कुछ लोग इन्हें बौद्ध और कुछ लोग जैन कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों का विश्वास है कि गया का बौद्ध मन्दिर इन्हीं का बनवाया है। यदि उन का यह अनुमान सत्य हो तो जान पड़ता है कि अमरसिंह ख्रीष्टीय पांचवीं शताब्दी में रहे होंगे क्योंकि कनिंघम आदि साहिब लोगों का अनुमान है कि गया का बौद्ध मन्दिर ख्रीष्टीय पांचवीं शताब्दी में बना होगा। एक श्लोक में इन का नाम अमरु कवि के साथ लगा हुआ मिलता है अतएव कदाचित् इनमें और अमरू कवि में उतनाही अन्तर रहा होगा जैसा कि कालिदास और भारवि में था। नवरत्न वाले अमरसिंह भी कदाचित् यही होंगे॥

अमरु कवि।

इनका रचित अमरुशतक नाम एक श्रृङ्गार रस का काव्य देखने में आता है। अमरु कवि के विषय में एक कथानक प्रसिद्ध है कि जब भगवत् पाद शङ्कराचार्य जी कश्मीर में गये तो वहां वालों ने इन्हें

संन्यासी समझ इन से शृङ्गार रस की कविता बनाने के लिये कहा। निदान शङ्कराचार्य जी परकाय प्रवेश योग शक्ति द्वारा राजा अमरु के शरीर में पैठे और उसी अवस्था में अमरु शतक बनाया। इस कथानक से इतनी बात तो अवश्य अनुमित होती है कि यद्यपि अमरुकवि और भगवत्पाद शङ्कराचार्य एकही जन न हों पर तौ भी परस्पर समकालीन रहे होंगे शङ्कराचार्य जी का समय आर्य विद्या सुधा करके अनुसार संवत् ७१८ से ७४२ तक सन् ७८८ ई० से सन् ८२० ई० तक विदित है। के० टी० टेलङ्ग का मत है कि शङ्कराचार्य सन् ५९८ ई० में वर्तमान रहे होंगे। अतएव अमरु कवि भी ख्रीष्टीय ७वीं और ८वीं शताब्दी के बीच किसी समय कश्मीर में हुये होंगे। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं कि संस्कृत में जितने कोश काव्य (अर्थात् खण्डकाव्य) हैं उन में से अमरु शतकही सब से उत्तम है। इस सौ श्लोक वाले ग्रन्थ की रचना भी बहुत अच्छी है। रचना देखने से स्पष्ट विदित होता है कि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन है। कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ने से चित्त जैसा अनुपम आल्हाद से भर जाता है वैसाही अमरुशतक के पढ़ने से भी तृप्त होता है। इस में कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता कि अमरु एक प्रधान कवि थे और इन की लेख प्रणाली अत्यन्त उद्भट किसी कवि से कम नहीं है काव्य प्रकाश कुवलयानन्द आदि ग्रन्थों में अमरुशतक के श्लोक उदाहरण में बहुधा आये हैं—

'हारोयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले।
मुक्तानामप्यवस्थेयं के वयं स्मर किंकराः" ॥

इस श्लोक में मुक्तानाम् यह पद कैसाही सुहावना और सुडौल है—कहता है इस मृग नयनी के स्तन पर यह हार लोट रहा है अर्थात् अत्यन्त लौलीन है बोलचाल में "लोट पोट हो जाना" अनुरक्त होने का द्योतक है— आगे कहते हैं मुक्तों की मुक्त जनों की दूसरे पक्ष में मुक्ता मोतियों की जब यह अवस्था है तब हमारी कौन जो निरे

काम किङ्कर हैं-ऐसी चातुरी के कई श्लोक अमरू शतक में हैं-कहते हैं अमरू किसी देश का राजा था और अत्यन्त कामी था सौ रानियां इस के थीं भगवत् शङ्कराचार्य परकाय प्रवेशिनी विद्या के द्वारा इसके शरीर में प्रवेश कर गये थे ऐसी किम्वदन्ती प्रचलित है-

---

आनन्द बर्द्धन ।

ये कवि कश्मीर के निवासी और प्रसिद्ध अलङ्कार शास्त्रज्ञ थे। इन्हीं के रचित ग्रन्थ काव्यालोक, ध्वन्यालोक, और सहृदयालोक हैं। कल्हण ने स्वकृत राज तरङ्गिणी में जहां मुक्ताकण और शिव स्वामी को अवन्तिवर्मा के राज्य में विद्यमान् कहा है वहीं पर आनन्दवर्द्धन का भी नामोल्लेख मिलता है। कश्मीर के अवन्तिवर्मा का राज्य काल सन् ८५५ ई० से ८८० ई० तक है। अनुमित होता है कि आनन्दबर्द्धन भी लगभग इसी समय में वर्त्तमान् रहे होंगे। इन के समकालीन आलङ्कारिक भट्ट कल्लट और रुद्रट भी थे॥

आर्य क्षेमीश्वर ।

इन्हीं प्रसिद्ध कवि का बनाया चण्डकौशिक नाम नाटक है। इस नाटक का उल्लेख साहित्य दर्पण को छोड़ प्रायः और किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता। पर साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ का समय संवत् १५२४ से अर्वाचीन नहीं हो सकता अतएव कविवर आर्यक्षेमीश्वर सम्भव है कि सन् १४६७ ई० के पूर्व किसी समय में रहे होंगे। स्वरचित नाटक में ये लिखते हैं कि राजा महीपाल देव की आज्ञानुसार इस नाटक का अभिनय करते हैं और स्वयं अपने को कार्त्तिकेय राजा का सभासद् नाटक के अन्त में लिखते हैं। बङ्गाल के पालबंशी राजाओं में से एक का नाम महीपाल मिलता है जिसका पिता विग्रह-

पाल दूसरा और पुत्र नयपाल देखने में आता है। सम्भव है कार्त्तिकेय इसी महीपाल का वंशज हो। महीपाल देव का समय सन् १०२६ ई० से सन् १०४० तक रहा होगा अतएव आर्य क्षेमीश्वर का समय इसी से थोड़ा पीछे अर्थात् ख्रीष्टीय ग्यारहवीं शताब्दी के बिचले भाग में माना जा सकता है॥

आर्य भट्ट।

ये एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे। इनका जन्म कुसुमपुर अर्थात् पटना में हुआ था। इन के बनाये ग्रन्थों के नाम सूर्य सिद्धान्त, आर्याष्टक और दशगीतिका हैं। गणक तरंगिणी नामक ग्रन्थ में पण्डित सुधाकर जी द्विवेदी ने जो इन का समय निर्देश किया है उससे अनुमान होता है कि इन का जन्म सन् ४७६ ई० में हुआ होगा। इन के शिष्य का नाम लल्ल था। और लल्ल का समय सन् ४९९ ई० है। वाराही संहिता के रचयिता वाराह मिहिर इन से पीछे रहे होंगे और उन का समय लोगों ने सन् ५०२ ई० से ५८७ ई० तक अनुमान किया है आर्यभट्ट ने पृथ्वी को चलती हुई माना है पर और लोगों ने तब इन की बड़ी जीट उड़ाई अब इस समय यही बात सर्वग्राह्य होती जाती है-कदाचित् इसी से फलित और मुहूर्त ग्रन्थ वालों ने इन के शिष्य लल्ल की बड़ी प्रतिष्ठा किया है "इतिलल्लः" ऐसा कह उन के बचनों को बहुधा उध्रित करते हैं पर आर्य भट्ट का नाम भी आधुनिक पण्डितों में कोई नहीं जानता-दूसरी बात यह भी सिद्ध होती है कि आर्य भट्ट कदाचित् मुहूर्त इत्यादि जो साफ २ नई कल्पनायें हैं न मानते रहे हों-हम भी इतना अवश्य कहेंगे कि जोतिष शास्त्र के ६४ अंग माने गये हैं "चतुःषष्ठ्यंगेज्योतिश्शास्त्रे" ऐसा बहुधा मिलता है पर उन ६४ में सबी बड़े काम के और हानिकारक नहीं हैं एक मुहूर्त को छोड़-मुहूर्तों के मानने से हिन्दुस्तान को बड़ी हानि

हुई और ब्राह्मणों ने प्रजा की चूंदी अपने हाथ में दबाये रखने को इसे निकाला न मुहूर्त में कोई आर्ष प्रमाण है-फलित पर भी जैमिनि सूत्र है पर मुहूर्तों पर किसी का सूत्र इत्यादि कुछ नहीं है-मुहूर्त ग्रन्थ वाले गर्ग, वशिष्ठ, नारद इत्यादि के नाम दिये हैं जो पता बांधने वाले ब्राह्मणों की निरी कल्पना मालूम होती है-

---

उदयनाचार्य।

ये प्रसिद्ध नैयायिक हैं। कणाद और गौतम इन दोनों के रचित-वैशेषिक शास्त्र और न्याय शास्त्र का इन्होंने भली भांति अनुशीलन किया था। अनुमान होता है कि ख्रीष्टीय १२वीं शताब्दी में वर्तमान थे क्योंकि नैषध चरित के रचयिता श्री हर्ष के पिता से उन का शास्त्रार्थ हुआ था। श्री हर्ष का समय लोग सन् ११६३ ई० से ११७७ ई० के लगभग अनुमान करते हैं। निदान उदयन का समय इस के कुछ थोड़ा पूर्व माना जा सकता है। ये मिथिला के निवासी थे और वाचस्पति मिश्र के कुछ पीछे हुये हैं। इन के रचित ग्रन्थों का नाम नीचे लिखे जाते हैं-किरणावली, न्यायकुसुमाञ्जलि, आत्मतत्वविवेक, न्यायपरिशिष्ट और न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि। नैयायिक श्रीधर जिस ने शाके ९१३ अर्थात् सन् ९९१ ई० में प्रशस्तपादभाष्य पर न्याय कन्दली टीका लिखी है उन्होंने उदयन की किरणावली देख के न्याय कन्दली लिखी ऐसा लोग अनुमान करते हैं। अतएव अनुमित होता है कि उदयनाचार्य सन् ९९१ के पूर्वकाल में रहे होंगे। इन्हीं आचार्य ने बौद्धधर्म को भारत वर्ष में ऐसा धक्का दिया कि फिर उसका सविशेष प्रचार न होने पाया। यदि श्रीहर्ष के पिता से उदयनाचार्य की भेंट हुई तो उन का समय न्याय कन्दलीकार के पूर्व होना कठिन जान पड़ता है।

उवट ।

ये कश्मीर निवासी पण्डित चारो बेदों के टीकाकार हैं । पतञ्जलि रचित व्याकरण महाभाष्य के टीका कार कैयट और औयट वा उवट ये दोनों काव्य प्रकाशकार मम्मट के कनिष्ट भ्राता हैं । उवट ने वाजसनेयी संहिता के भाष्य में लिखा है-

"ऋष्यादींश्च पुरस्कृत्य अवन्त्यामुवटोवसन् ।
मन्त्रभाष्यमिदंचक्रे भोजेशष्ट्रं प्रशासति" ॥

जिस से अनुमान होता है कि उवट अवन्ती में राजा भोज के राज्यकाल में विद्यमान् थे पर ये अपने पिता का नाम बज्रट बतलाते हैं और मम्मट के पिता का नाम जैयट है । एक और सन्देह यह भी होता है कि जब मम्मट ने भोज रचित सरस्वती कण्ठाभरण के श्लोक को काव्य प्रकाश में उठाया है तो मम्मट भोज से पीछे उत्पन्न सिद्ध होते हैं फिर उन के कनिष्ठ भाई उवट भोज के समकालीन कैसे हो सकते हैं । इस गोल माल में ऐसा अनुमान करने से निर्वाह हो सकता है कि मम्मट और भोज दोनों समकालीन रहे हों । और मम्मट उवट के सगे भाई न रहे हों वा वज्रट के पोष्य पुत्र रहे हों । राजा भोज का समय सन् ९९६ ई०—११५३ ई० तक लोग मानते हैं निदान उवट सन् ईस्वी की १२वीं शताब्दी में विद्यमान् थे ऐसा अनुमान करना असङ्गत नहीं बोध होता है ॥

उमापतिधर ।

श्री हरिमोहन प्रामाणिक लिखते हैं कि श्रीमद्भागवत की भावार्थ दीपिका टीका पर जो वैष्णव तोषिणी टीका लिखी गई है उस में यों लिखा है–"श्री जयदेव सहचरेण महाराज लक्ष्मण सेन मन्त्रिवरेणोमा-

पतिधरेच" इत्यादि इस से विदित होता है कि उमापति धरनाम कवि बंगाल के सेन वंशी राजा बल्लाल सेन का पुत्र है। जान पड़ता है कि इसी लक्ष्मण सेन ने १११९ ई० में लक्ष्मण सेन संवत् चलाया। इसी लक्ष्मण सेन के समकालीन जयदेव कवि हुये जिस ने गीतगोविन्द रचा है। उमापतिधर का नाम गीतगोविन्द में मिलता भी है यथा—

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिराम्।
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुते॥
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयवचनैराचार्यगोवर्द्धनः।
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कविक्ष्मापतिः॥

अर्थात् उमापतिधर वाक्य रचना के विस्तार में बड़े चतुर हैं पर किसी प्रबन्ध को ठीक २ रचने में जयदेवही चतुर है-शरण अपनी तीखी बुद्धि के लिये प्रशंसनीय है। आचार्य गोवर्द्धन की नाईं शृङ्गार रस के उत्तम वचन और किसी के मुख से नहीं निकले। धोयी कवियों का राजा दूसरे का कहा स्मरण रखना भली भांति जानता है।

उपरोक्त श्लोक द्वारा उमापतिधर और जयदेव लक्ष्मण सेन राजा के समकालीन थे और राजा लक्ष्मण सेन का समय सन् ११११ ई० है। अतएव ख्रीष्टीय १२वीं शताब्दी के आरम्भ और मध्य भाग में संभवतः कवि उमापतिधर विद्यमान् रहे होंगे। इनका बनाया कोई ग्रन्थ सुनने में नहीं आया पर एशियाटिक सुसाइटी में एक शिला लेख रक्खा है जिस में उमापतिधर के रचे ३६ श्लोक खुदे हैं॥

कल्हण ।

ये कश्मीर निवासी थे और राजा जयसिंह के समय में वर्तमान थे । इन्हीं ने कश्मीर का इतिहास लिखा है जिस का नाम राजतरंगिणी है । कल्हण स्वयम् राजतरंगिणी में लिखते हैं ॥

लौकिकेब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम् ।
सप्तत्यत्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥

अर्थात् अब लौकिक वर्ष २४ और शाके वर्ष १०७० बीत चुका है। इस से स्पष्ट बोध होता है कि ये सन् ११४८ ईस्वी के विद्यमान थे। लोग कहते हैं कि यदि भारतवर्ष में शृङ्खला बद्ध प्राचीन इतिहास विश्वास के योग्य है तो यही राजतरंगिणी है । इस ग्रन्थ के सहारे कश्मीर तथा भारत के और २ प्रान्तों की कुछेक प्रसिद्ध घटनाओं का समय जाना जाता है । गत कलि संवत् में २५ घटा के उस में १०० से भाग देने पर जो शेष बचे वह लौकिक वर्ष समझा जाता है ॥

हरिमङ्गल मिश्र

गीतासार समुच्चय ।

पहले के आगे से ।

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥

छठवीं अध्याय का आरम्भ इस तरह पर किया है कि फल की आकांक्षा बिलकुल छोड़ जो इस संसार के कर्तव्य उचित कामों को करता है वही सन्यासी है वही योगी है—वैसे सन्यासी को भगवान्

अर्जुन को उपदेश नहीं करते जैसा इस समय सन्यास आश्रम की फ़जीहत देखने में आती है कि भेखमात्र सन्यासी का है पर संसार के प्रपञ्च में जैसा उन का मन फंसा है वैसा गृहस्थ का भी नहीं— तो सिद्ध हुआ कि वह गृहस्थ क्या बुरा जो चित्त का शुद्ध है अनेक कुत्सित कर्म और बुरी वासनाओं से न केवल दूर हटा है बरन उन से घिनाता है—श्लोक में "ननिरग्निर्नचाक्रियः" लिख बहुतही साफकर दिया कि अग्निहोत्र आदि धर्म सम्बन्धी कामों को भी छोड़ काम करने मात्र से किनाराकश मुफ्त में खा दूसरे को बोझ हो ज़िन्दगी काटना सन्यास नहीं है इस से यह बहुतही स्पष्ट है कि उचित कर्तव्य कर्म को करताही रहे—आधुनिक वेदान्ती अहंब्रह्मास्मि वाले स्वभाव वादी जो भला बुरा दोनों को एक मान रहे हैं और दोनों को बन्धन का कारण मानते हैं उनका सिद्धान्त तो इस से सर्वथा कट जाता है—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

तीसरे श्लोक में फिर कर्म का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं—योग की सीढ़ी पर जो चढ़ा चाहता है उस के लिये उपासना और भक्ति आदि के पोषक जो कर्म हैं वही साधन हैं और जब योग मार्ग में सम्यक् निष्णात हो गया उस के लिये शान्ति का होना साधन है— अर्थात् तब मन उस मनन शील मुनि का बाहरी प्रपञ्च से हट जाता है उमंग या हवस उठतीही नहीं किन्तु संसार के सब काम काज करता जाता है छोड़ता नहीं—

पाचवें श्लोक में पुरुषार्थाभिनिवेश Will power की अन्तिम सीमा प्रगट करते हैं—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

हमारे मन की बात है मन में आ जाय तो हम अपना उद्धार अपने आप कर सकते हैं जहां तक बने अपने आत्मा का अधःपात न करै—इस से सिद्ध हुआ कि हम आपही अपने मित्र हैं आपही अपने शत्रु हैं; तात्पर्य यह कि जो भला काम करेंगे तो भलाई होगी दूषित निन्दित काम करेंगे तो बुराई—इसी से गायत्री मंत्र में कहते हैं "धियो यो नः प्रचोदयात्" जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करता है—तात्पर्य यह कि वह सर्वज्ञ है जिस में हमारी भलाई समझे उसी ओर बुद्धि को प्रेरित करै—इस श्लोक में भी मनो नाश करने वालों पर गहरी चोट दी गई है—आगे बतलाते हैं कि योग मार्ग में प्रवृत्ति के लिये क्या चाहिये और कैसे जान पड़े कि हम उस में प्रवृत्त हैं—

जितात्मानः प्रशान्तस्य परमात्मासमाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥

जिस ने आत्मा को वश में कर लिया है, शान्त है, आस्तिक्य बुद्धि के साथ परमात्मा में मन लगाये हुये है, गरमी सरदी सुख दुख मान अपमान में जो एक सा रहता है, पुस्तकों के पढ़ने से तथा महात्माओं के सत्संग से जो ज्ञान प्राप्त हुआ और अपने निज के अनुभव से जो उसे मिला उसी से तृप्त है; इन्द्रियों को जीते हुये है; सोना और पत्थर को एक समझता है उसे कहना चाहिये यह योगारूढ़ है—

आगे समबुद्धि की विशेष प्रशंसा करते हैं—

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपिच पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥

सुहृद् में, मित्र में, शत्रु में, वैसे में जो न अपना शत्रु है न मित्र है, तथा जो मध्यस्थ है उस में; अपने से द्वेष रखने वाले में, साधु में, और पापी में जो एक सा रहता है वही समबुद्धि प्रशंसा के योग्य है— आगे कई श्लोकों में आसन आदि का प्रकार बतला कहते हैं—

प्रशान्तात्मा विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥

जिसके आत्मा को सब ओर से शान्ति प्राप्त है; जिसे कहीं से किसी का डर नहीं है; जो ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित है; मन को सब ओर से रोक मेरे में लगाय तन्मय हो योगासन पर स्थित हो—इस भांत जो योगी एकाग्र चित्त हो योग का अभ्यास करता है वह परम शान्ति पाता है और मोक्षपद का अधिकारी होता है—ऊपर के श्लोकों में यह दिखाया कि शान्ति कैसे मिलती है और उस से क्या लाभ है—

आगे योगी के लिये कर्म में अत्यन्त आसक्ति को रोकते भी हैं— आहार विहार में संयम के साथ प्रवृत्त रहे अत्यन्त भोजन या भोजन बिलकुल छोड़ निराहार; अत्यन्त सोना अत्यन्त जागना; यह सब योगी के लिये हानिकारक हैं जो उचित मात्रा से ठीक समय पर भोजन करता है ठीक समय से सोता जागता है उसे योग का साधन गृहस्थी में रह कर भी कभी हानिकरने वाला नहीं होता बल्कि सुख-दायी है "पंक्चुअलिटी" की सीमा आगई इस से बढ़ कर "पंक्चुअल" होने का फ़ाइदा और कहां पा सकते हो—

नात्यश्नतस्तु योगोस्ति नचैकान्तमनश्नतः ।
नचातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

यथादीपोनिवातस्थोनेङ्गते सोपमास्मृता ।
योगिनो यतचितस्य युंजतो योगमात्मनः ॥

जैसा दीपक की टेम ऐसे स्थान में जहां हवा नहीं है स्थिर रहती है बिलकुल हिलती डोलती नहीं वैसाही चंचल यह मन उस योगी का हो जाता है जिस ने मन को अपने वश में कर लिया है–इस अवस्था में सुख की पराकाष्ठा जो उस योगी को प्राप्त होती है उसे बतलाते हैं–

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलतितत्वतः ॥

योगी को चिरस्थायी ऐसा परम सुख प्राप्त होता है जो इन्द्रियातीत है अर्थात् जिस सुख का ज्ञान इन्द्रियों को नहीं है गूंगे का लड्डू सा केवल बुद्धि उसे जान सकती है मुख से कह कर नहीं बतला सकता कि कैसा या किस के समान सुख मिला और जिस अवस्था में स्थित हो तत्व से चलायमान् नहीं होता—

यं लभ्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेनगुरुणापि विचाल्यते ॥

जिसे पाकर उस से भी अधिक कोई और भी लाभ संसार में हई नहीं यह उस के चित्त में अच्छी तरह वैठ जाता है–इस आत्यन्तिक सुख की दशा में कैसाही बड़ा दुःख आपड़े वह ज़रा चलायमान् नहीं होता–दृढ़ता का ओर छोर है महम्मद या ईसा के धर्म में भी कहीं पर इस तरह की शिक्षा या चित्त स्थिर करने की उपाय बताई गई है?

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमास्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत ॥

मन को वश करने का उपाय कहते हैं यह चञ्चल और अस्थिर मन जिस २ ओर से अलग होता जाय उस २ ओर से इसे रोक अपने वश में लावै-

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

जीवमात्र में अपने को देखै और अपने में सब जीवों को; योग युक्तात्मा सब ठौर सम दर्शन हो-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोपि सयोगी मयि वर्तते॥

जो मुझ को सब ठौर देखता है और सब कुछ मुझ में देखता है उस से मैं अलग नहीं हूं न वही मुझ से अलग है-सच है अनन्यता इसी को कहते हैं एक परमात्मा को छोड़ दूसरा और कुछ है नहीं इस बुद्धि में दृढ़ हो जो मुझ को सब जीव मात्र में स्थित मान भजता है वह योगी चाहो कैसी दशा में प्राप्त हो मुझ से अलग नहीं है-इस दशा में आकर आदमी फिर मजनू या शैदाई हो जायगा-धन्य हैं ऐसे लोग अवश्यमेव जीवन मुक्त हैं जिन्में इस तरह का भाव आगया है-

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं सयोगी परमो मतः॥

अपने समान सब जीवों में सुख या दुःख को जो देखता है वह योगियों में सब से श्रेष्ठ है-अब यहां पर अर्जुन शंका करते हैं कि हे!

मधुसूदन समता उत्पन्न करने वाला जो यह योग मार्ग आपने बतलाया वह इस चंचल मन में कैसे स्थिर हो सकता है—मन अत्यन्त चंचल है, इतना बलवान् है कि देह और इन्द्रियाँ सभों को हिला डालता है इस का ठहरना वैसाही कठिन है जैसा वायु को रोक कर एक जगह ठहरा देना—इस पर भगवान् कहते हैं हाँ। निस्सन्देह मन नहीं वश में आ सकता और चंचल है किन्तु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा वश में किया जा सकता है जिन्होंने आत्मा को वश में लाना नहीं सीखा उन के लिये तो योग बहुत कठिन है किन्तु जिन्हों ने आत्मा को वश में लाने का अभ्यास नहीं रक्खा है वे बहुत उपाय करने से मन को ठहरा सकते हैं—

अर्जुन फिर पूछते हैं मन को तो वश में नहीं ला सका पर इस ओर उसे श्रद्धा अवश्य है अर्थात् नास्तिक न हो विश्वास बुद्धि "Faith' रखता है योग मार्ग में बहुत दिन तक रह कर मन उस का चलायमान हो योग भ्रष्ट हो गया है तब योग सिद्धि न पाकर उस की क्या गति होती है क्या तब वह न इधर का हुआ न उधर का वायु के झकोरों से उड़े हुये बादलों के समान सर्वथा नष्ट हो जाता है? इस पर भगवान् कहते हैं—

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ॥
प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकानुषित्वा शाश्वतीःसमाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टो भिजायते ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥

अर्जुन निश्चय जानो उस पुरुष का न इस लोक न पर लोक दोनों में नाश नहीं है—जो भलाई का काम करने वाले हैं उन की दुर्गति

नहीं होती—योगाभ्यास का फल उसे स्वर्ग आदि लोक की प्राप्ति है और वहां चिरकाल स्वर्ग के सुखों का अनुभव कर फिर मर्त्य लोक में किसी पवित्र कुल में बड़े धनाढ्य के घर योग भ्रष्ट जन्म लेता है या किसी ऐसे कुल में पैदा होता है जहां योगाभ्यास करने वाले हुये हैं यह सब भी अत्यन्त दुर्लभ है इस लोक में ऐसा जन्म पाना सहज नहीं है—

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदैहिकम्।
यतते च ततो भूयः संसिद्धो कुरुनन्दन॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।

तहां जन्म ले पूर्व जन्म के संस्कार से उसे आप से आप योग में प्रवृत्ति होती है तब फिर योग सिद्धि के लिये यत्न करता है—पहले उसे इस में अभ्यास रहा इस लिये वेवश उस ओर इस की झुकावट हो जाती है—आगे अध्याय की समाप्ति करते योगी को सब से श्रेष्ठ कहा है विशेषतर ऐसे योगी को जो श्रद्धावान् हो अनन्य भाव से भगवान् कहते हैं मुझे भजता है—

"योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

सातवीं अध्याय का आरम्भ इस तरह पर करते हैं कि मेरे में मन लगाय और मेरा आसरा ले योग अर्थात् कर्त्तव्य कर्म का अभ्यास करता हुआ निस्सन्देह पूरी तरह पर जैसे मुझे जान जाता है उसे सुनो—भगवान् कहते हैं अर्जुन मैं तुम को वह ज्ञान बतलाता हूं जिस को जान कर फिर और कुछ जानने के लायक नहीं रह जाता और जिस से ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है—पहले तो हजारों मनुष्य में कोई एक ऐसे निकलते हैं जो सिद्धि पाने के लिये यत्न करते हैं यत्न करने वालों में जो सिद्धि को भी पा गये हैं कोई ऐसे हैं जो मुझे ठीक २ जानते हैं—मैं क्या हूं सो आगे बतलाते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेवच।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

इस जड़ात्मक जगत् में मेरी अलग २ आठ प्रकार की मूर्ति हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार;

अपरेयमिति त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

पहले जो गिनाया वह सब जड़ मूर्ति हैं; चेतना उन सबों में किसी में नहीं हैं-जो चैतन्य मूर्ति मेरी है वह जीव रूप है और इन आठों से अलग है समस्त जड़ जगत् इसी चैतन्य जीव रूप के आधार से चल फिर रहा है और चैतन्य रूप में है-

ह्लादिनी संवित् और सन्धिनी यह ३ परमेश्वर की शक्तियां हैं-पहली ह्लादिनी शक्ति आनन्द रूपा शक्ति है और जो भावुक परमेश्वर के प्रेमी अनन्य भक्त हैं उन्हीं में इस का परिणाम देख पड़ता है-संवित् साधारण ज्ञान रूप में परिणत हो जीवमात्र में ईश्वर की शक्ति रहती है-कमोवेश साधारण ज्ञान जीव मात्र को रहता है कीड़े मकोड़े से मनुष्य तक अनुकूल या प्रतिकूल वेदनीय पदार्थों को जानते हैं इसी से दुर्गा में लिखा है-

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे।
विषयश्च महाभाग यातिचैवं पृथक् पृथक्॥

तीसरी शक्ति सन्धिनी जो परमेश्वर की भाषा रूपा वृत्ति है उसी "भूमिरापोऽनलोवायुः" इस श्लोक में दरसाया है-

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा॥

मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥

अर्जुन, सम्पूर्ण विश्व जड़ात्मक और चेतनात्मक दोनों शक्तियों से व्याप्त है इस से हमी इस समस्त जगत् के कर्ता और संहार करने वाले हैं=इस संसार में मुझ से अलग या मुझ से अधिक श्रेष्ठ कोई पदार्थ नहीं है सूत या डोरे में जैसा भांत २ के मणि एकही में पिरोहे रहते हैं वैसेही यह दृश्य जगत् मुझ से पिरोहा है उसी को अलग २ भी बतलाते हैं-

रसोहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशि सूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदषु शब्दः खे पौरूषं नृषु ॥

जल में जो द्रव अर्थात् रसीक हो वह निकलता है वह भगवान् कहते हैं हमी हैं द्रव हो जानाही जल में जलत्व है जल में द्रवता न रहे ता फिर रही क्या गया--चन्द्रमा और सूर्य में जो प्रकाश है वह हमी हैं-सम्पूर्ण वेदों में ओंकार मेरा रूप है "प्रणवःसर्ववाङ्मयः" आकाश में शब्द हैं "शब्दगुणमाकाशम्" आकाश वही है जिस में शब्द फैल सके जहां शब्द नही फैलेगा वहां आकाशही न होगा-मनुष्य मात्र में पौरुष भगवान् कहते हैं मेराही रूप है पुरुषार्थ या पौरुषेय गुण विहीन को पुरुष कहनाही भूल है भारत इस समय बहुतही पौरुषेय गुण विहीन है इसी से अनेक दुर्गति सह रहा है-

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥

"गन्धवती पृथ्वी" बिना गन्ध के पृथ्वी हई नहीं तो गन्धवान् होनाही पृथ्वी का लक्षण है सो गन्ध भगवान् कहते हैं मेरा रूप है—पुण्य गन्ध अर्थात् सुगन्ध; तो जो कुछ दुर्गन्ध है वह उस का रूप नहीं है यह

पुण्य शब्द उपलक्षण है यावत् उत्तम वस्तु का--पदार्थ के जो उत्तमोत्तम गुण हैं सब उसी की विभूति हैं-अग्नि में जो तेज है वह उसी का रूप है-भूत मात्र में जो जीवन है वह उसी का रूप है जीवन निकल गया तब इस देह में रहाही क्या जैसा काष्ट और पत्थर तद्वत् यह देह भी रही-तपस्वियों में तपस्या जो उन का मुख्य बल है सो भी उसी की विभूति है-

वीजं मा सर्वभूताना विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजास्विनीमहम् ॥

माया या प्रकृति क्षेत्र रूपा है उस में ब्रह्म बीज रूप है और माया की अपेक्षा सनातन अर्थात् सदा रहने वाला हो यावत् प्राणी मात्र को उत्पन्न करता है-बुद्धिमानो में बुद्धि तत्व तेजस्वियों में तेज रूप वही है--

वलं वलवतां चाहं कामरागविवर्जितम् ।
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ॥

इस श्लोक का भावार्थ बड़ाही उत्तम है भगवान् कहते हैं हे भारत वंशियों में श्रेष्ठ राग द्वेष शून्य जो बल है वह हमी हैं--तात्पर्य यह कि मैं वह बल नहीं हूं कि बल पाय जिस से द्वेष है उसे सताऊं या पीड़ा पहुंचाऊं ऐसा हो जाने से तो फिर विषम भाव आ जाता है जो ईश्वरीय गुण के सर्वथा विरुद्ध है--काम अर्थात् संसार के विषय भोग भी हमी हैं पर वह बिषय भोग जिस से धर्म और अर्थ दोनों में हानि नहीं पहुंचती धर्म से विरुद्ध न होकर काम सेवा सर्वथा उचित किसी तरह हेय नहीं है "धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः यस्त्वेकसेव्यः स नरो जघन्यः" धर्म अर्थ और काम अर्थात् विषय भोग ये तीनो जो त्रिवर्ग कहलाते हैं एक दूसरे का बिरोधी न हो बराबर से सेवनीय हैं एकही की सेवा करने वाले जघन्य हैं—जो सबेरे से उठ सांझ लो पूजा पाठ किया करते हैं वे जघन्य हैं अनुचित करते हैं एवम् जो आठो पहर

रुपयाही कमाने में लगे रहते हैं वे भी नीच हैं–ऐसाही दिन रात जो केवल विषयासक्त रहते हैं वे भी उसी नीचों की कोटि में हैं हिन्दुस्तान की कितनी बड़ी २ रियासतें इसी से नष्ट हो गईं और होती जाती हैं--दिल्ली ओर लखनऊ तो इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं–

ये चैव सात्विकाभावा राजतसास्तमसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि नत्वहं तेषु ते मयि॥

आगे कहते हैं कहां तक गिनावैं सात्विक, राजस, तामस ये तीनों जो चित्त के धर्म विशेष हैं वे सब हमी हैं और हमी से हैं किन्तु हम उन्में नहीं हैं वे बल्कि हमारे में हैं शारीरक सूत्र भी ऐसाही कहता है "अपीतौतल्लयात"–

त्रिभिर्गुणमयैर्भावै रेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति यामेभ्यः परमव्ययम्॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि त्रिगुणात्मक चित्त के धर्म विशेष से मोहित और व्याप्त जीव मात्र मुझे नहीं पहचानते इस लिये कि मैं इन त्रिगुण के परे हूं–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

मुझे कौन पहचान सक्ता है सो बतलाते हैं–मेरी यह त्रिगुणात्मक अपार माया का अद्भुत क्रम है कि कोई नहीं बचे जो इस के जाल में फँसे न हों केवल वेही इस के जाल में फसने से बचते हैं जो मेरा शरण लिये हैं–

न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।
माययापहृतज्ञाना आसुरंभावमाश्रिताः॥

दुष्कृत आचरण वाले मूढ़ नराधम माया से जिनका ज्ञान नष्ट हो रहा है काम, क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य आदि आसुरी प्रकृति के हैं वे मेरा शरण नहीं लेते न इस ओर उन की झुकावट होती है–

महाराणी अहिल्या बाई का राजकाज कौशल और महाराज तुक्को जी हुल्कर के चरित्र के दो एक चित्र ।

प्राचीन इतिहासों के पठन पाठन से स्वानुभूत चारित्रों का वर्णन अधिक लाभदायक जान आज हमें महाराज तुक्को जी के चरित्र के दो एक चित्र पर अपने पढ़ने वालों की दृष्टि का लाना समयोचित मालूम होता है–

महाराज तुक्को जी की स्वीकृत जननी महाराणी अहिल्या बाई पति वियोग के पश्चात् राज काज स्वयम् संपादन करती थीं–राज का ठीक २ इन्तिज़ाम करते अहिल्या बाई को जब कुछ दिन बीते तो एक दिन उन के मन में यह विचार उठा कि इस अनित्य क्षणभंगुर शरीर का कुछ ठिकाना नहीं इस लिये किसी योग्य शिरोमणि पुरुष व्यक्ति के हाथ में राज काज का होना अति आवश्यक है–यह विचार मन में दृढ़ कर अपने अङ्ग रक्षक सेवकों को सन्मुख बुलाय आज्ञा दी कि राजधानी में हमारी बिरादरी के ५ वर्ष से ८ वर्ष की उमर तक के बालकों को जल्द हमारे सामने उपस्थित करो–आज्ञा पातेही कर्मचारियों ने अहिल्या बाई की जाति के अनेक कुलीन बालकों को ला एकत्र किया और उन्हें पंक्ति बद्ध खड़ा कर दिया अहिल्या ने पांच २ सेकंड प्रत्येक बालक की आकृति पर लक्ष्यकर तुक्को नाम बालक का हाथ पकड़ आज्ञा दी कि इस बालक को अन्तःपुर में ले जाकर राज्य की मर्यादा के अनुसार स्नान करा वस्त्र और आभूषण से आभूषित कर जल्द हमारे सामने उपस्थित करो–आज्ञा पातेही तत्काल राज्याभिषेकोत्सव की मनादी नगर में फिर गई–यह शुभ समाचार प्रजा के कान में पड़तेही लोग आनन्द मग्न हो घर२ बधाई बजाने लगे–थोड़ी देर में राजधानी भांत २ की शुभ सूचक सामग्रियों से शोभित हो गई

और दुर्बल बालक तुकुवा राज सिंहासन का मालिक हो तुक्को जी कहलाने लगा–धन्य है प्रभो तेरी अपरंपार लीला है–अब इस ८ वर्ष के बालक को ब्रह्मचर्य पूर्वक पूर्ण विद्या प्राप्त कराने को अनेक बूढ़े कुलवान् सदाचार संपन्न उच्च श्रेणी के विद्वान् अध्यापक नियत कर उन्हें महाराणी ने आज्ञा दी कि मैंने आप लोगों को अपने अनुभव से श्रेष्ठ विद्वान् समझ लाखों प्रजा का कल्याण नीति निपुण सुशासक के द्वारा निश्चित कर इस बालक को आप लोगों को सौंपे देती हूं जब तक यह युवा अवस्था को न पहुंचे और आप लोगों से प्रतिष्ठा पत्र न पाले तब तक आप लोग इसे निज पुत्र समान इस के लालन पालन तथा सुशिक्षा के अधिकारी हैं–इस बालक की सेवा में सेवक भी पूर्ण वयस्क, मनवच कर्म से शुद्ध, सत्य आचरण वाले, शुशील सेवक नियत किये और उन्हें आज्ञा दी कि प्रिय सेवको तुम्हारे अहो भाग्य कि आज से तुम लोग अपने चिरंजीवी महाराज के निकट वर्ती सेवक हुये–तुम को बड़ा नाज़ुक काम सौंपा जाता है; मन्दबुद्धि सेवक बालक राजा की सेवा को अपना बड़ा भाग्य मानते हैं और अपनी कुटिल चालाकी से नहीं चूकते; आप तो सब भांत कुमार्गी होतेही हैं कोमल मति अपने मालिक को भी कुमार्ग में लाने से नहीं चूकते–खबरदार राजा को बालक मत समझो किन्तु उसे अग्नि सदृश तेजःपुंज जान सदा भयभीत रहना अपने स्वामी के सन्मुख मलिन विचारों को कभी चित्त में न लाना--विना काम कभी पास आने का साहस न करना महाराज के सामने कोई अयोग्य चेष्टा न करना जिस से बालक राजा के मन में उस का बुरा असर पैदा हो इत्यादि उपदेश देने के उपरान्त प्रत्येक को अलग २ काम सौंपे–अवकाश मिलने पर नीति युक्त राज काज के अनेक उत्तम उपदेश महाराणी इस बालक को स्वयं करती थीं–सारांश यह कि अहिल्या बाई की योग्यता ने तुक्को जी को क्षात्र धर्म और राज काज में निपुण कर छोटे से राज्य को उत्तम पद पर पहुंचाय सिद्ध कर दिया कि भारत की कितनी महिलायें ऐसी हो गई

हैं जो राज्यभार उठाने में प्रवीण और दूर दर्शी थें-तुक्को जी जब १८ वर्ष के हो गये तो महाराणी विक्टोरिया ने भी इन के राज्य पंद स्वीकार का अनुमोदन किया-

अधिकार पाने पर महाराज ने राज्य में दौरा करने का दृढ़ संकल्प कर राज्य का यथोचित्त प्रबन्ध के उपरान्त विश्वास पात्र ४ दीवानों को साथ ले साधारण यात्रियों की भांत एक २ कंबल और लोटा डोर ले सूर्योदय के पहले महल से प्रस्थान कर रेज़िडेन्ट साहब के बंगले पर जा साहब से कहा हम इस भेष से यात्रा के इरादे से आये हैं राज्य का प्रबन्ध कर आया हूं और आप तो हई हैं तब शङ्का काहे की—हम पांचों आदमियों की फोटो ले लीं जाय जिस में यह कोई न जाने कि हम इस भेख में फिर रहे हैं—इस तरह की दो चार बातें कर साहब से हाथ मिला चल खड़े हुये-प्रति दिन ५ बजे उठ थोड़ा चल मार्ग में जो कोई बटोही मिल जाता या खेतों में कृषक काम करते हों उन से राम रमौअल के पीछे हुक्का तमाखू के मिस उन से दो चार बातें कर उन की वाह्य घटनायें तथा आभ्यन्तरिक घटनाओं का फोटो अपने चित्त में उतार ठीक ११ बजे किसी मुकाम पर आ दाखिल होते थे; कमर खोल थोड़ी देर सुस्ताय सब मिल भोजन आदि आवश्यकीय दिन चर्या से सुचित हो एक घंटा जहां पहुंचते थे उस गांव या नगर की फेरी करते थे यात्रा में यह नित्य का नियम था—तमोली, हलवाई, पसारी, बनिया, तमाखूवाला, शर्राफ, सेठ, साहूकारों की दूकानों में जा वहां २ से भरपूर तजरबा हासिल कर जुये के अड्डे, शराब की गद्दी, चंडू खानों की झूमती मंडलियों की मौज लेते कोर्ट में जा खड़े हुये जहां मेजिसट्रेटों का न्याय जजों की विशाल बुद्धि वकीलों के धारा प्रवाह नीतियुक्तवादाविवाद की विचित्र छटा का अवलोकन कर यथाशक्ति प्रत्येक नगर या ग्राम के प्रसिद्ध २ स्थानो का निरीक्षण करते दिन भर घूमते २ ८ बजे डेरे में आ भोजन कर खाने पीने से सुचित हो सुख पूर्वक शयन करते थे और महाराज की निद्रा

समय अपने २ पहरे में चारो दीवान रात्रि को पहरा देते थे यही अन्तर महाराज और दीवानों के बीच था शेष समय न कोई राजा था न दीवान जो था वह पथिक था इस प्रकार प्रत्येक प्रसिद्ध नगर में ४-५ दिन निवास कर नाना विधि के चरित्रों के चित्रों का पार्सल बांधते देखते सुनते प्रजा के क्षेम और घातक मंडलियों के समस्त चरित्रों का अनुभव कर दो वर्ष पर्यटन करने के पश्चात् अपने राज्य में सुशोभित हो राज कार्य फिर पूर्ववत् करने लगे—महाराज तुक्कोजी के इस प्रशंसनीय यात्रा का राज्य ने क्या फल भोग किया अनुभविक विद्या के बल से राज्य वृद्धि के क्या २ नियम प्रचलित किये और किस प्रकार राज्य कार्य में दत्तचित्त रहे इत्यादि विषय सविस्तर इतिहास वेत्ताओं ने लिखे होंगे मैं तो केवल दो चार वही प्रशंसनीय गुण जिन को मैंने अपनी आखों देख चुका हूं उन को पाठकों के अर्पण करता हूं—महाराज नित्य प्रातःकाल ३ बजे ब्राह्म मुहूर्त में निद्रा माता की गोद को त्याग शौचआदि से निश्चिन्त हो मीर मुन्शी सहित गाड़ी में सवार हो बाडी गार्ड को संग ले नगर बाहर किसी मैदान में जा घोड़े खुलवा लंप जलवा मिसल सुनना आरम्भ करते थे जब भली भांति प्रकाश हो जाता तो फिर थोड़ी दूर पैदल चल गाड़ी में सवार हो मीर मुन्शी से राज्य विषय की चर्चा करते देखते भालते ८ बजे महल में उपस्थित होते थे—मार्ग में जो कोई प्रजा वर्ग मिलता दुर्बल हो वा धनवान् पंडित हो वा मूर्ख उस से प्रीति पूर्वक निर अभिमान कुशल क्षेम के पश्चात् पूछना कि तुम्हारे इस समय आने से जान पड़ता है कि तुम कुछ कहा चाहते हो यदि ऐसाही है तो जो कहना हो निडर हो कहो दो घंटा बाहरही गाड़ी के ऊपर बैठे २ दर्बार कर सब अर्ज़ीदारों की अर्ज़ी में यथोचित आज्ञा दे ठीक १० बजे महल में प्रवेश कर १ घंटा फिर दर्बार करके ११ बजे से १२ बजे तक स्नान ध्यान भोजन कर शयन गृह में आ राज्य कार्य का चिन्तन करते २ कुछ निद्रा ले दो बजे दर्बार हाल में शोभित होते थे—तुक्कोजी का चित्त गोविन्द राव से

अधिक मिलता था पर विश्वास पात्र होने से गोविन्दराव को खाने पीने और सोने तक की फुरसत बहुत कम मिलती थी हर जून इन के घर पर महाराजा साहब का सवार बुला लाने को खड़ाही रहा करता था–दीवान खाने में राज्य के मुख्य अधिकारी; विदेश से आये हुये पंडित सौदागर व्यौपारी प्रत्येक विषय के गुणी शिल्पकार आदि; मर्यादानुसार यथा स्थान महाराज के आगमन की बाट जोहते बैठे रहते थे—महाराजा और साधारण कर्मचारियों के बीच केवल तीन तकिये वाली गद्दी का अन्तर रहता था नहीं तो यह किसी तरह नहीं प्रगट होता था कि महाराज तथा और कर्मचारियों में क्या अन्तर है; तुक्को जी दर्बार की शानोशौकत के सर्वथा विरुद्ध थे-जिस इलाके के अध्यक्ष की ओर महाराज ने इशारा किया वही अपने इलाके की रिपोर्ट सुनाने लगता था–अमुक दिन अमुक गांव के अमुक आसामी ने अमुक बात की अर्ज़ी दी थी उस पर दीवान जीने क्या रिपोर्ट दी है वह मिसल निकालो इस तरह प्रत्येक विषय की आलोचना करते विदेश से आये हुये पंडित तथा वैपारियों से बात चीत कर उन्हें सन्तुष्ट करते थे-जिन को विदा करना मंज़ूर हो उन को उचित विदाई दे विदा करते--नित्य का काम नित्य भुगतान कर ११ बजे अन्तःपुर में प्रवेश करते ¦ये महाराज की यह नित्य की दिन चर्या थी–तुक्को जी केवल ३ या ४ घंटा सोते थे बाकी समय राज काज में लगाते थे; राज्य के छोटे से छोटे गांव या गरीब से गरीब आसामी भी इनकी स्मृति पथ के बाहर न थे और यह कोई असम्भव या अचरज की बात नहीं है क्योंकि हर एक आदमी अपने घर की प्रत्येक छोटी कोठरियों की और उन कोठरियों में धरी छोटी से छोटी चीज़ों की याद या खबर रखता है तब राजा को अपने राज्य की सुध रखना कौन सी बड़ी बात है–यह त्रुटि केवल उन्हीं में होती है जो भोग विलास में मग्न राज्य क्या अपने घर बरन अपने तन की सुध नहीं रखते तो गये घर का कहनाही क्या और उन के लिये पश्चात्ताप करने से फल क्या-जैसा कोई बड़े कुनबे वालों